सारस्वत श्रमण नय चक्रवर्ती श्रमणाचार्य
108 श्री विभवसागर जी मुनिराज

क्षु. दीक्षा
28 जनवरी 1995 मंगलगिरि सागर म.प्र.

ऐलक दीक्षा
23 फरवरी 1996 देवेन्द्रनगर (पन्ना) म.प्र.

मुनि दीक्षा
14 दिसम्बर 1998 अति. क्षेत्र बरासौ भिण्ड म.प्र.

दीक्षा गुरु
गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महाराज

आचार्य पद
31 मार्च 2007 औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

पू. मुनि 108
श्री शुद्धात्मसागरजी महाराज

ऐलक दीक्षा
17 जनवरी 2016, नवापारा राजिम (छ.ग.)

मुनि दीक्षा
16 फरवरी 2018, श्रवण बेलगोला (कर्ना.)

दीक्षा गुरु
आ. श्री विभवसागर जी महाराज

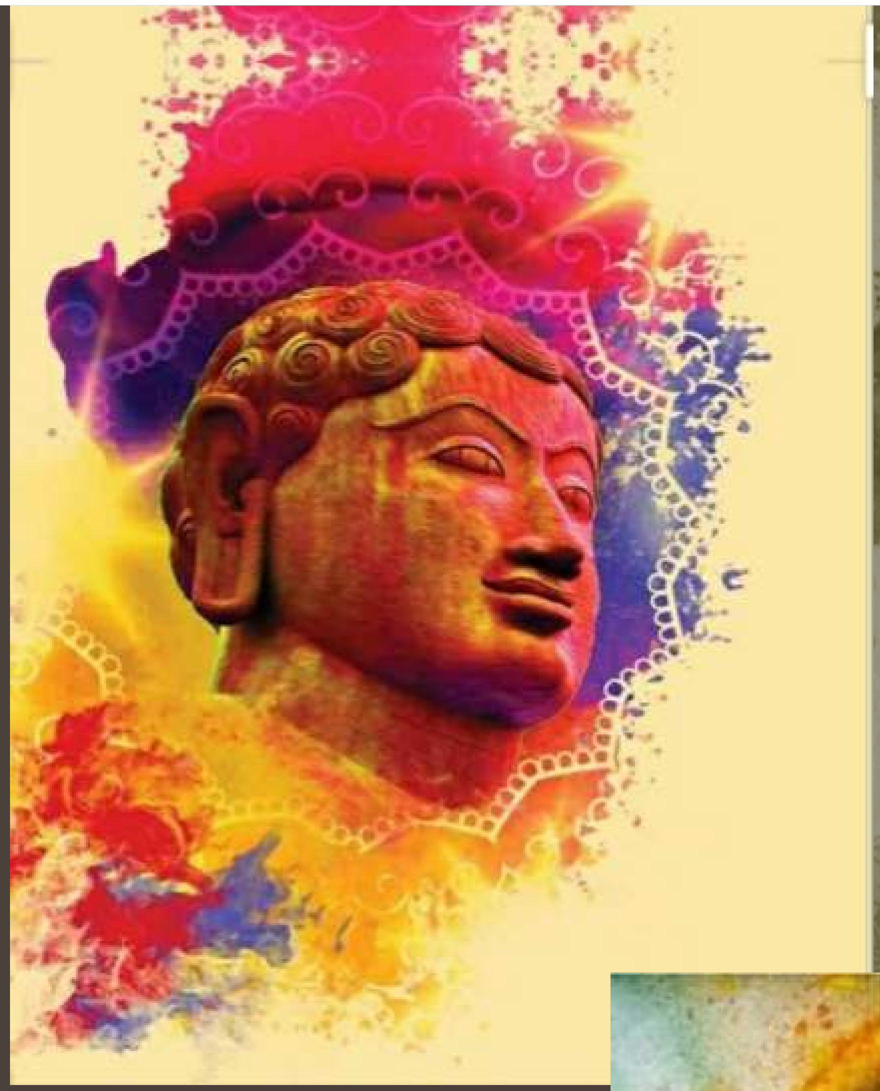

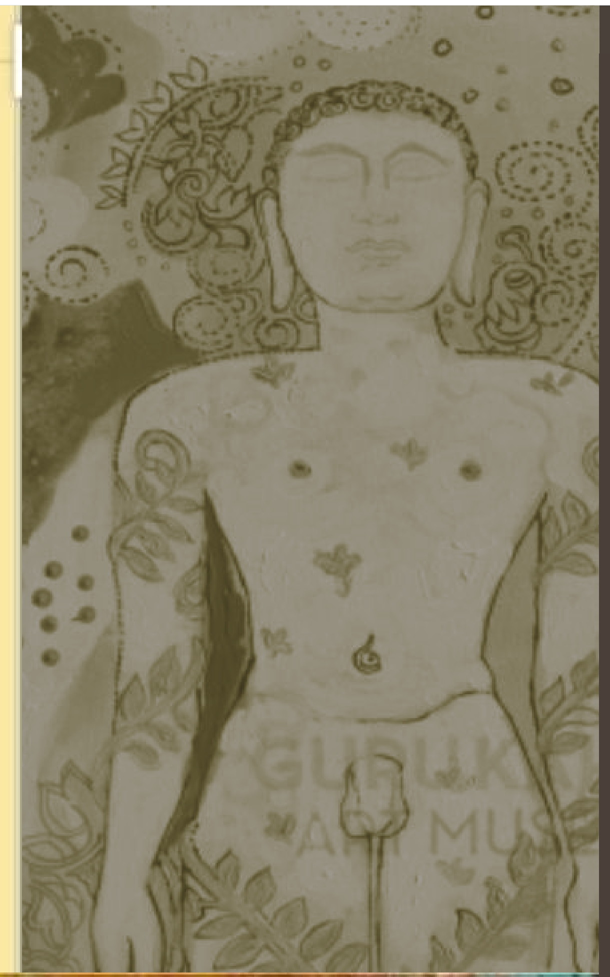

आचार्य जिनसेन महाकवि रचित आदिपुराण पर आधारित

# बाहुबली चरित्र

**संकलन : श्रमण शुद्धात्म सागर**

## ग्रंथ परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ "बाहुबली-चरित्र" श्री जिनसेनाचार्य रचित ग्रन्थ आदिपुराण पर आधारित है। श्रमण शुद्धात्म सागर ने श्रुत स्वाध्याय करके इसे स्वतंत्र शास्त्र के रूप में संकलित किया।

बाहुबली-चरित्र की कथावस्तु के प्रधान कथानायक आदिनाथ के पुत्र प्रथम कामदेव बाहुबली जो उत्कृष्ट कायोत्सर्गी महामुनिराज होकर प्रथम मोक्षगामी हुए।

राजा ऋषभदेव की महादेवी सुनन्दा की पुण्य कुक्षी से बाहुबली का जन्म हुआ। जबकि नन्दा महादेवी की पुण्य कुक्षी से भरतादि पुत्रों का जन्म हुआ।

इस ग्रन्थ के द्वितीय पर्व में बाहुबली के जन्मोत्सव का रोचक वर्णन है। तृतीय पर्व में आदिनाथ प्रभु के वैराग्य पूर्वक बाहुबली के युवराज एवं भरत के राज पद का समीचीन वर्णन है।

अग्रिम पर्वों में व्यक्तिगत विशेषताओं को संक्षेप में मनोहर वर्णित है - जैसे

अनीति नहीं, नीति स्वीकार करना। सर्वप्रथम आत्म युद्ध विवेक पूर्ण निर्णय लेना।

दृष्टि युद्ध, जल युद्ध, मल्ल युद्ध में विजय पाना। सार्वभौमिक स्वामित्व प्राप्त होने पर भी वैराग्य चिन्तन की प्रेरणा से समग्र वैभव को जीर्ण तृणवत् छोड़कर निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा धारण कर, प्रतिमा योग तपकर, शुक्ल ध्यान से कैवल्य प्रकट किया। तथा अष्टापद कैलाश पर्वत से मोक्ष पधारे।

प्रस्तुत ग्रन्थ पठनीय है। प्रमाणिक होने से बोधि समाधि का निधान है।

– आचार्य विभव सागर

Navjivan Niwai- 559X669 - 175 - 5-10-2019

12x25

आचार्य जिनसेन महाकवि रचित आदिपुराण पर आधारित

# बाहुबली चरित्र

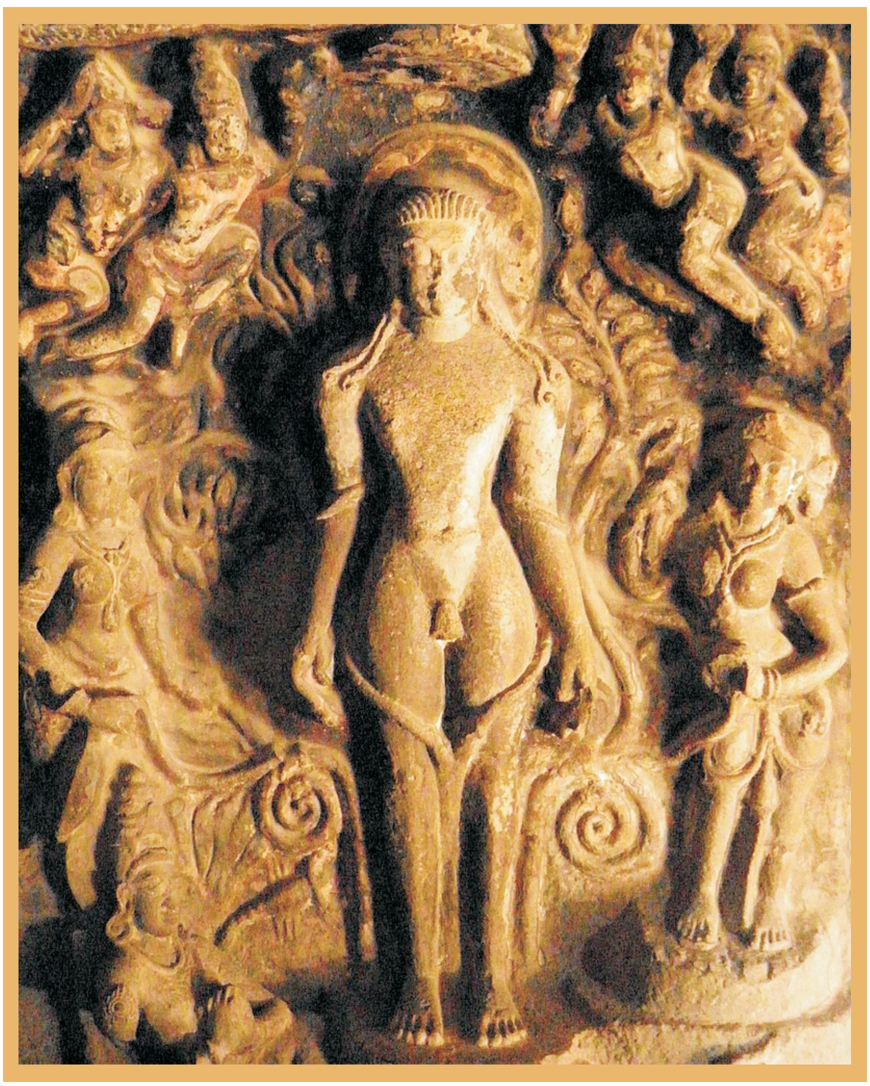

संकलन : श्रमण शुद्धात्म सागर

| | | |
|---|---|---|
| मूलकृति | - | आदिपुराण |
| रचयिता | - | आचार्य जिनसेन |
| ग्रन्थ | - | बाहुबली चारित्र |
| पद्यानुवाद | - | श्रमणाचार्य विभवसागर जी महाराज |
| संकलन | - | श्रमण शुद्धात्म सागर |
| संस्करण | - | प्रथम 2019 |
| भाव मूल्य | - | स्वाध्याय प्रतिज्ञा |
| आवृत्ति | - | 1000 |
| प्रकाशक | - | श्रमण श्रुत सेवा संस्थान (पं.क्र. coop/2019 जयपुर/104083) |

प्राप्ति स्थल -

1. टी. के वेद/ प्रतिपाल टोंग्या
   8-DX/C स्कीम नं. 71, गुमाश्ता नगर के पास इन्दौर–452009
   मो. 9425154777, 9302106984
2. सौरभ जैन
   प्रज्ञा इंस्टीट्यूट ऑफ पर्सनिलिटी डवलपमेन्ट, सिद्धान्त कॉम्पलेक्स,
   141, FS-2, गली नं. 6, आदर्श बाजार, टोंक फाटक, बरकत नगर,
   जयपुर–302015 मो. 9829178749
3. सन्मति जैन
   जैन चश्माघर, परकोटा, सागर (म.प्र.) मो. 9425462997

मुद्रक : नवजीवन प्रिन्टर्स
'नवजीवन कॉम्पलेक्स' निवाई (टोंक-राज.) भारत
फोन : 01438-222127, 228377 • Email : navjeewan.jain@gmail.com

**श्री श्री 1008 श्री बाहुबली भगवान**

हे गोम्मटेश्वर!
बाहुबली भगवान!
जय हो

मैंने गोम्मटेश्वर आपके
युगल चरणों के अन्तराल में बैठकरके
आपकी आराधना करते हुए आपके
युगल-चरण अपने युगल हस्तकमलों
से छुए। मैंने जब चरण छुए तब मेरे
लिए ऐसा अनुभव हुआ मानो
आपने हृदय मेरा छू लिया हो।

हे नाथ!
मेरे आत्म प्रदेशों में अद्‌भुत
प्रभाव हुआ कि आपके गुण
मुझमे वैसे ही प्रकट हो रहे
जैसे सरोवर में सूर्योदय से
कमल खिलते हैं।

हे भगवन्! मेरा समाधि-
मरण आपके चरणों में
हो।

आ० विभव सागर

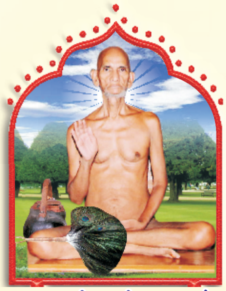

प.पू. प्रातः स्मरणीय तपस्वी सम्राट आचार्य १०८
श्री सन्मतिसागरजी महाराज

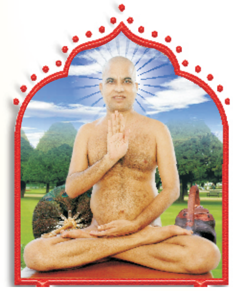

प. पू. गणाचार्य श्री १०८
विराग सागरजी महाराज

प्रवचनकार

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य

# विभवसागर मुनिराज

# संघस्थ चेतन कृतियाँ

पू. मुनि 108
श्री विभास्वरसागरजी महाराज

पू. मुनि 108
श्री आचारसागरजी महाराज

पू. मुनि 108
श्री शुद्धात्मसागरजी महाराज

पू. मुनि 108
श्री सिद्धात्मसागरजी महाराज

पू. आर्यिका 105
श्री अर्हम्श्री माताजी

पू. आर्यिका 105
श्री संस्कृतश्री माताजी

## दीक्षार्थी

बालब्रह्मचारी
वीरेन्द्र भैया जी

## संघस्थ भैयाजी

बालब्रह्मचारी
अभिनन्दन भैया जी

देवाधिदेव 1008 श्री शांतिनाथ भगवान

देवाधिदेव 1008 श्री पार्श्वनाथ भगवान

# आचार्य श्री विभवसागर जी की प्रेरणा से निर्मित भव्य मानस्तंभ

## प.पू. श्रमणाचार्य 108 श्री विभवसागर जी महाराज

ससंघ के

## मंगल वर्षायोग-2019 निवाई

के पुनीत अवसर पर प्रकाशित

वर्षायोग स्थल : श्री 1008 शान्तिनाथ दि. जैन अग्रवाल मन्दिर, निवाई

**विनयावनत :**

आ. विभवसागर वर्षायोग समिति
निवाई

श्री शान्तिनाथ दि. जैन अग्रवाल
मन्दिर समिति

सकल दिगम्बर जैन समाज, निवाई

ॐ — श्रमणाचार्य विभवसागर

"स्वाध्यायः परमं तपः"

उक्त सूक्ति वाक्य को आत्मसात करते हुए हमारे स्वाध्यायशील, अभीक्ष्ण ज्ञान योगी, मंत्र पुत्र श्रमण शुद्धात्म सागर जी ने आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय कर श्रुतभक्ति को बढ़ाया तथा गुरु समागम में रह गुरुभक्ति को वृद्धिंगत किया फल स्वरूप गुरु प्रसाद से विद्या सिद्ध हुई।

संप्रति आपने श्री "आदिपुराण" शास्त्रराज का स्वाध्याय कर उसमें से बाहुबली चरित्र का संकलन किया।

बाहुबली महामस्तकाभिषेक महोत्सव पर आपकी यह कृति अनावृत होना थी, जो न हो सकी। परम सौभाग्य यह जागा कि ऐलक अनेकान्त सागर जी गोम्मटेश की धरती पर 16 फरवरी 2018 को अनावृत हो परम दिगम्बर श्रमण शुद्धात्म सागर जी हुए। वह दिन परम पूजनीय रहेगा।

आप निरन्तर जिनागम ग्रन्थों का समीचीन स्वाध्याय कर स्वपर को लाभ पहुंचायें। इस पवित्र श्रुत सेवा के लिए हमारा उन्हें

शुभाशीर्वाद....

निवाई - वर्षायोग
2019.

आचार्य जिनसेन विरचित

# भ. बाहुबली की स्तुति

## मालिनी छंद

**सकलनृ पसमाजे दृष्टिमल्लाम्बुयुद्धे**
**विंजितभरतकीर्तिर्यः प्रवव्राज मुक्त्यै।**
**तृणमिव विगणय्य प्राज्यसाम्राज्यभारं।**
**चरमतनुधराणामग्रणीः सोऽवताद् वः।।**

जिन्होंने समस्त राजाओं में सभा में दृष्टि युद्ध, मलयुद्ध और जलयुद्ध के द्वारा भरत की समस्त कीर्ति जीत ली थी, जिन्होंने बड़े भारी राज्य के भार को तृण के समान तुच्छ समझकर मुक्ति प्राप्त करने के लिए दीक्षा धारण की थी और जो शरीरियों में सबसे मुख्य थे – भगवान बाहुबली तुम सबकी रक्षा करें।

**भरत विजयलक्ष्मीर्जाज्व लच्चक्रमूर्त्या,**
**यनिमभिसरन्ती क्षत्रियाणां समक्षम्।**
**चिरतरमव धुतापत्रपापात्रमासी**
**दधिगतगुरूमार्गः सोऽवताद्दोर्बली वः।।**

सब क्षत्रियों के सामने भरत की विजयलक्ष्मी दैदीप्यमान चक्र की मूर्ति के बहाने से जिन बाहुबली के समीप गयी थी, परन्तु जिनके द्वारा सदा के लिए तिरस्कृत होकर लज्जा का पात्र हुई थी और जिन्होंने अपने पिता का मार्ग (मुनिमार्ग) स्वीकृत किया था, वे भगवान बाहुबली तुम सबकी रक्षा करें।

**स जयति जयलक्ष्मीसंङ्गमाशामवन्ध्यां,**
**विदधदधिकधामा सन्निधौ पार्थिवानाम्।**
**सकल जगदगारव्याप्तकीर्तिस्तपस्या**
**मभजत यशसे यः सुनुराद्यस्य धातुः।।**

जो अनेक राजाओं के सामने सफल हुई जयलक्ष्मी के समागम की आशा को धारण कर रहे थे, सबसे अधिक तेजस्वी थे, जिनकी कीर्ति समस्त जगत्रूपी घर में व्याप्त थी और जिन्होंने वास्तविक यश के लिए तप धारण किया था, वे आदिब्रह्म वृषभदेव के पुत्र सदा जयवन्त हों।

**जयति भुजबलीशो बाहुवीर्य स यस्य**

**प्रथितमभवदग्रे क्षत्रियाणां नियुद्धे।**
**भरतनृपतिनामा यस्य नामाक्षराणि**
**स्मृतिपथमुपयान्ति प्राणिवृन्दं पुनान्ति।।**

जिसकी भुजाओं का बल क्षत्रियों के सामने भरतराज के साथ हुए मलयुद्ध से प्रसिद्ध हुआ था और जिनके नाम के अक्षर स्मरण में आते ही प्राणियों के समूह को पवित्र कर देते हैं, वे बाहुबली स्वामी सदा जयवन्त हों।

**जयति भुजगवक्त्रोद्वान्तनिर्यद्गराग्निः,**
**प्रशममसकृदापत् प्राप्य पादौ यदीयौ।**
**सकलभुवनमान्यः खेचरस्त्रीकराग्रो**
**द्ग्रथितविततवीरूद्वेष्टितो दोर्बलीशः।।**

जिसके चरणों को पाकर सर्पों के मुँह के उच्छ्वास से निकलती हुई विष की अग्नि बार-बार शांत हो जाती थी, जो समस्त लोक में मान्य है, और जिनके शरीर पर फैली हुई लताओं को विद्याधरियाँ अपने हाथों के अग्रभाग से हटा देती थीं। वे बाहुबली स्वामी सदा जयवन्त हों।

**जयति भरतराज प्रांशुमौलयग्ररत्नो**
**पललुलितनखेन्दुः स्त्रष्टुराद्छयस्य सूनुः।**
**भु जगकु लक लापै राकुलैर्नाकु लत्वं**
**धृतिबलकलितो यो योगभृन्नैव भेजे।।**

भरतराज के ऊँचे मुकुट के अग्रभाग मे लगे हुए रत्नों से जिनके चरण के नखारूपी चन्द्रमा अत्यन्त चमक रहे थे, जो धैर्य और बल से सहित थे तथा जो इसलिए ही क्षोभ को प्राप्त हुए सर्पो के समूह से कभी आकुलता को प्राप्त नहीं हुए थे, वे आदि ब्रह्मा भगवान वृषभदेव के पुत्र बाहुबली योगीराज सदा जयवन्त रहें।

**शितिभिरलिकु लाभैराभुजं लम्बमानैः,**
**पिहितभुजविटङ् को मूर्धजैर्वोल्लिताग्रैः।**
**जलधरपरिरोधध्याममूर्द्धेव भूध्रः,**
**श्रियमपुषदनूनां दोर्बली यः सनोऽव्यात्।।**

भ्रमरो के समूह के समान काले, भुजाओं तक लटकते हुए तथा जिनका अग्रभाग टेढ़ा हो रहा है, ऐसे मस्तक के बालों से जिनकी भुजाओं का अग्रभाग ढक गया है और इसलिए ही जो मेघों के

आवरण से मलिन शिखार वाले पर्वत की पूर्ण शोभा को पुष्ट कर रहे हैं, वे भगवान बाहुबली हम सब की रक्षा करें।

**य जयति हिमकाले यो हिमानीपरीतं,**
**वपुरचल इवोच्चैर्बिभ्रदाविर्बभूव।**
**नवघनसलिलौर्घर्यश्च धौतोऽब्दकाले,**
**खरघृणिकिरणानप्युष्णकाले विषेहे।।**

जो शीतकाल मे बर्फ से ढके हुए ऊँचे शरीर को धारण करते हुए पर्वत के समान प्रकट होते थे, वर्षाऋतु में नवीन मेघों के जल के समूह से प्रक्षालित होते थे भीगते रहते थे और ग्रीष्मकाल में सूर्य की किरणों को सहन करते थे, वे बाहुबली स्वामी सदा जयवंत हों।

**जगति जयिनमेनं योगिनं योगिवर्यै**
**रधिगत महिमानं मानितं माननीयैः।**
**स्मरतिहृदिनितान्तं यः शान्तान्तरात्मा,**
**भजति विजयलक्ष्मीमाशु जैनीमजय्याम्।।**

जिन्होंने अंतरंग-बहिरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है, बडे-बड़े योगिराज ही जिनकी महिमा जान सकते हें, और जो पूज्य पुरूषों के द्वारा भी पूजनीय हैं, ऐसे इन योगिराज बाहुबली को जो पुरूष अपने हृदय में स्मरण करता है, उसका अंतरात्मका शांत हो जाता है और वह शीघ्र ही जिनेन्द्र भगवान की अजय्य (जिसे कोई भी जीत न सके) विजयलक्ष्मी-मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त होती है।

# गोमटेश थुदि

**आचार्य श्री नेमिचन्द्र स्वामी**

विसट्ट–कदोट्ट दलाणुयारं। सुलोयणं चंद–समाण–तुंड।।
घोणाजियं चम्पय–पुप्फसोहं। तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं।।1।।
अच्छाय–सच्छं जलकंत–गंडं। आबाहु–दोलंत सुकण्ण पासं।।
गइंद–सुण्डुज्जवल बाहुदण्ड। तं गोमटेसं पणमाभि णिच्चं।।2।।
सुकण्ठ–सोहा जिय–दिव्व संखं। हिमालयुद्दाम विसाल कंधं।।
सुपेक्ख णिज्जायल–सुट्ठमज्झं। तं गोमअे सं पणमामि णिच्चं।।3।।
विज्झायलग्गे पविभासमाणं। सिंहामणि सव्व–सुचेदियाणं।।
तिलोय–संतोसय पुण्ण चंद। तं गोमअे सं पणमाभि णिच्चं।।4।।
लया समक्कंत महासरीरं। भव्वावली लद्धसुकप्परूक्खं।
देविदंविंदच्चिय पायपोम्मं। तं गोमटे सं पणमामि णिच्चं।।5।।
दियंबरो जोण च भीड़–जुत्तो। ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।।
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो। तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं।।6।।
आसां ण जो पेक्खदि सच्छदिट्ठी। सोक्खे णवंछा हयदोसमूलं।
विराय–भावं भरहे विसंल्लं। तं गोमटे सं पणमामि णिच्चं।।7।।
उपाहि मुत्तं धण–धामवज्जियं। सुसम्मजुतं मय–मोह हारयं।।
वस्सेय–पंज्जंत मुववासजुतं। तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं।।8।।

# गोमटेश अष्टक - 1

नीलकमल दल सम अति सुन्दर, नयन युगल तेरे। पूर्णचन्द्र सम वदन मनोहर, बाहुबली मेरे।
चम्पक कलिका जीत रही है, मनभावन नासा।। गोमटेश के श्रीचरणों में, झुका रहा माथा।।1।।
निर्मल जल कांति सम सुंदर, द्वय कपोल तेरे। नभ सी निर्मल देह दमकती, कर्ण युगल घेरे।।
गज सुण्डासम भुजा शोभती, शुभाशीष दाता। गोमटेश के श्री चरणों में झुका रहा माथा।।2।।
कंठ आपका जीत रहा है, धवल शंख छवि को। हृदय हिमालय सा विशाल है, जीत रहा गिरि को।।
दर्शनीय है रूप आपका, नित्य नयन भाता। गोमटेश के श्रीचरणों में, झुका रहा माथा।।3।।
विंध्यांचल पर दमक रहे हो तपमय आभा से। भव्यजनों को कल्पवृक्ष सम, फलदाता वन से।।
पूर्ण चन्द्र सम लोकतंत्र को, देते सुख-साता। गोमटेश के श्रीचरणों में झुका रहा माथा।।4।।
लिपटीं है माधवी लतायें, इस निश्चल तन से। भव्यजनों को कल्पवृक्ष सम, फलदाता वन से।।
इन्द्र देवता चरण पूजते, गाते नित गाथा। गोमटेश के श्रीचरणों में झुका रहा माथा।।5।।
आशा पोषण कभी न करते, शुद्ध दृष्टि धारें। दोष मूल यह मोह नाश कर, भव सुख निरवारें।।
भरत भ्रात में शल्यरहित हो, उर विराग पाता। गोमटेश के श्रीचरणों में झुका रहा माथा।।6।।
पूर्ण दिगम्बर सप्त भयों से, निर्भय मन वाले। अम्बर आडम्बर से निष्पृह, समताधन वाले।।
अकम्प अविचल चरण-शरण में, विषधर भी आता। गोमटेश के श्रीचरणों में, झुका रहा माथा।।7।।
ब्राह्याभ्यन्तर सर्व परिग्रह, के प्रभुवर त्यागी। धन-मकान कंचन सब त्यागा, बनकर वैरागी।।
एक वर्ष तक अनशन धारा, साम्य भाव धाता। गोमटेश के श्रीचरणों में, झुका रहा माथा।।8।।

मुनिश्री नेमिचन्द्राचार्य द्वारा विरचित : गोमटेश थुदिः

# गोमटेश अष्टक-2

## (रेखताछन्द)

पद्यानुवाद,
- मुनि विभवसागर महाराज

कमल की नील पंखुरी राम, मनोहर निर्मल जिनके नेत्र।
चमकता पूनम चंदा सा, प्रभु के मुख मण्डल पर तेज।।
सुरभि चम्पक सी कलियों की, जीतनी नासा यह अभिराम।
प्रभोवर गोमटेश जिनदेव, आपको मेरा नम्र प्रणाम।।1।।

सलिल की सुन्दर शोभा से, दमकते जिनके गोल-कपोल।
शुभ्र अम्बर सी निजकी देह, भुजा तक कर्ण रहे द्वय डोल।।
शोभती गजशुण्डासम हैं, भुजायें जिनकी ललित ललाम।
प्रभोवर! गोमटेश जिनदेव, आपको मेरा नम्र प्रणाम।।2।।

मुकुट विंध्याचल पर राजे, अलौकिक ताप से आभावान।
जगत जिनवर प्रतिमाओं में, आपकी छायी कीर्तिमहान।।
आप लोकत्रय जीवों को, चन्द्राम हैं आनंद निधान।
प्रभोवर! गोमटेश जिनदेव, आपको मेरा नम्र प्रणाम।।3।।

लताये लिपटी चरणों से, घेरकर यह औदारिक काय।
आप तो कल्पवृक्ष जिनराज, महाफल दाता भव्य सहाय।।
सदा शत् इन्द्रों सं वन्दित, पूज्य पद महा अर्चनाधाम।
प्रभोवर! गोमटेश जिनदेव, आपको मेरा नम्र प्रणाम।।4।।

दिगम्बर मुद्रा धारी है, नहीं भय निर्भय है निकलंक।
वचन मन काया चेतन शुद्ध, श्रमण सच्चे हैं आप निःशंक।
चरण छूते हैं विषधर भी, आप निष्कंप रहे श्रीमान।
प्रभोवर! गोमटेश जिनदेव, आपको मेरा नम्र प्रणाम।।5।।

वीतरागी समदृष्टि देव!, नहीं आशओं के पोषक।
किया हैं दोष मूल का नाश, नहीं भवसुख के सम्पोषक।।
भ्रात भरतेश्वर मैं भी आप, विरागी शल्यरहित धीमान्।
प्रभोवर! धन मकान कंचन, घारकर समताभाव प्रसंग।।

**किया तप अनशन वर्ष प्रमाण, धन्य निर्मोही निर्मल ध्यान।**
**प्रभोवर! गोमटेश जिनदेव, आपको मेरा नम्र प्रणाम।।6।।**
**दोहा -**

**गोमटेश अष्टक रचा, करके नमन हजार।**
**'विभव' स्वयं का पा सकूँ, यही भावना धार।।**

# बाहुबली भगवान का संक्षिप्त परिचय

| | | |
|---|---|---|
| 1. पूर्व मनुष्य भव का नाम | - | महाबाहु |
| 2. मनुष्य भव पूर्व इन्द्र पद का नाम | - | अहमिन्द्र |
| 3. पूर्व इन्द्र पद का स्थान | - | सर्वार्थसिद्धि |
| 4. वर्तमान नाम | - | बाहुबली |
| 5. वर्तमान भव की जन्म नगरी | - | आयोध्या |
| 6. वर्तमान जन्मतिथि एवं नक्षत्र | - | चैत्रकृष्ण नवमी, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र |
| 7. माता का नाम | - | सुनंदा देवी |
| 8. पिता का नाम | - | आदिनाथ जी |
| 9. दादा का नाम | - | नाभिराय जी |
| 10. दादी का नाम | - | मरूदेवी जी |
| 11. शरीर का वर्ण | - | मरकतमणि प्रभासम (हरा) |
| 12. वंश का नाम | - | इक्ष्वाकुवंश |
| 13. पद विशेष | - | प्रथम कामदेव पोदनपुर नरेश |
| 14. अध्ययन | - | कामनीति स्त्री पुरूष लक्षण ग्रन्थ आयुव्रेद, धनुर्वेद, अश्व-गज-परीक्षण, रत्न परीक्षा आदिं |
| 15. अध्ययन गुरू | - | पूज्य पिता ऋषभदेव |
| 16. शरीर ऊँचाई | - | पाँच सौ पच्चीस धनुष |
| 17. वैराग्य का कारण | - | युद्धभूमि में भरत चक्रवर्ती द्वारा चक्र चलाया जाना। |
| 18. दीक्षा गुरू | - | केवलज्ञानी आदिनाथ भगवान। |

| | | |
|---|---|---|
| 19. तपयोग विशेष | – | प्रतिमायोग तप |
| 20. तपस्थल | – | विंध्याचल का शिखर |
| 21. तपस्या काल | – | एक वर्ष तक उपवासपूर्वक ध्यान |
| 22. ध्यान तप का फल | – | चार घातिया कर्म प्रक्षीण करके अनंत चतुष्टय प्राप्त, अरिहंतपद 'जीवन मुक्त परमात्मा' केवलज्ञानी। |
| 23. दिव्यदेशनामण्डप का नाम | – | गन्धकुटी |
| 24. योगनिवृत्ति एवं मोक्षगमनस्थल | – | अष्टाद (कैलाश पर्वत) |
| जन्म समय माता को स्वप्न दर्शन | – | ग्रसी हुई पृथ्वी, सुमेरू पर्वत, चन्द्रमा सहित सूर्य, हंस सहित सरोवर, चंचल लहरी समुन्द्र |
| जन्म समय | – | रात्रि |
| अन्य नाम | – | मनोज, मन्मथ, मनोभ, मदन, मनोभव, पादबली, भुजबली, ध्यानबली, कायबली। |
| उपदेश सूत्र | – | अहिंसा से सुख, त्याग से शान्ति, मैत्री से प्रगति, ध्यान से सिद्धि |

**जीवनगत विशेषताएँ :-**

अनीति नहीं, चुनौति स्वीकार करना। दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध में चक्रवर्ती को युद्ध में पराजित करना। रक्तविहीन अहिंसात्मक महायुद्ध में तीनों युद्ध जीतकर षट्खण्ड भूमि का स्वामित्व प्राप्त होने पर भी चिन्तन एवं वैराग्य की प्रबल प्रेरणा से पलभर में तृणवत् त्याग कमर निर्गन्थ मुनि दीक्षा अंगीकार करके, विंध्याचल पर्वत पर एक वर्ष तक अनशन धारण कर एक ही स्थान पर खड़े होकर प्रतिमा तप में लीन होकर ध्यान करके कैवल्य बोध प्राप्त कर जगत् को धर्मोपदेश देकर आदिनाथ तीर्थकर से पहले अष्टापद से मोक्ष पधारें।

# अनुक्रमणिका

मंगलाचरण
भगवान बाहुबली के पूर्व भव
स्वप्नदर्शन एवं फल
बाहुबली का जन्म
बाहुबली का बाल्य एवं युवारूप
विद्याध्ययन
युवराजपद प्राप्त
चक्ररत्न का रूकना
भरत का पश्चाताप और विचार
पोदनपुर नगरी की शोभा
बाहुबली के द्वारा भरत की राजी खुशी पूछना
बाहुबली का उत्तर
बाहुबली के योद्धाओं का विचार
संध्या ओर रात्रि का वर्णन
सवेरा होना और मंगल पाठ का पढ़ा जाना
भरत की सेना का पोदनपुर पहुँचना
मंत्रिओं के द्वारा युद्ध का निर्णय
तीनों तरह का युद्ध और बाहुबली की विजय
वैराग्य और दीक्षाग्रहण
बाहुबली का तपश्चरण
केवलज्ञान की प्राप्ति और भरत के द्वारा की हुई पूजा
भगवान बाहुबली का उपदेश
योगनिरोध एवं मोक्षगमन
भगवान बाहुबली की प्रतिमाएँ

# मंगलाचरण

**श्रवणवेलगोलायां, विन्ध्यगिरौ विराजते।**
**नित्यं बाहुबलिं वन्दे, वक्ष्ये चरित पावनम्।।1।।**
**महाकविजिनसेनः, कर्मसेनां विदारकः।**
**येन बाहुबलीर्वृतं, पुराणे प्रतिपादितः।।**

**अर्थ** -

श्रवणबेलगोला में विन्ध्यगिरि पर शोभायमान श्री बाहुबली की हमेशा वन्दना करता हूँ तथा उनके पावन चरित्र को कहता हूँ।।1।।

कर्म सेना को विदारण करने वाले महाकवि जिनसेन प्रसिद्ध हैं जिन्होंने यह बाहुबली चरित, पुराण में प्रतिपादित किया है।

**श्रुणोति पठति भक्त्या, सत्सुखं ह्रनुभूयेते।**
**तस्मात् विनयभावेन, सम्यक्चारित्रसाधनम।।**

जो इस शास्त्र को भक्ति से पढ़ता है, अथवा सुनता है, वह सुख का अनुभव करता है, उस कारण विनय भाव से अब सम्यक् चारित्र साधा जाता है।

# भगवान बाहुबली के पूर्व भव

1. पूर्व विदेह वत्सकावती देश के राजा प्रीतिवर्धन के मंत्री
2. उत्तरकुरू में भोगभूमिज आर्य हुए
3. वज्रजंघ के **आनन्द** नामक पुरोहित
4. अधोग्रैवेयक में **अहमिन्द्र**
5. वज्रसेन के पुत्र **महाबाहु**
6. सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र
7. ऋषभदेव के पुत्र कामदेव बाहुबली

# भगवान बाहुबली के पूर्व भव

जम्बूद्वीप के महामेरू से पूर्व दिशा की ओर स्थित विदेहे क्षेत्र में जो महामनोहर पुष्कलावती नामक देश है, वह स्वर्गभूमि के समान सुन्दर है। उसी देश में एक उत्पखेटक नाम का नगर है, जो कि कमलों से आच्छादित धान के खेतों, कोट और परिखा आदि की शोभा से उस पुष्कलावती देश को भूषित करता है।

उस नगरी का राजा वज्रबाहु जो कि इन्द्र के समान आज्ञा चलाने में सदा तत्पर रहता था। उसकी रानी का

नाम वसुन्धरा था। वह वसुन्धरा सहनशीलता आदि गुणों से ऐसी शोभायमान होती थी, जैसे दूसरी वसुन्धरा पृथिवी ही हो ललितांग नाम का देव (भगवान आदिनाथ का जीव) स्वर्ग से च्युत होकर उन्हीं ब्रजबाहु और वसुन्धरा के वज्र के समान जंघा होने से 'वज्रजंघ' नाम को धारण करने वाला पुत्र हुआ।

विदेहक्षेत्र में एक पुण्डरीकिणी नगरी है। वज्रदन्त नाम का राजा उसका अधिपति था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीपती था, जो वास्तव में लक्ष्मी के समान सुन्दर शरीर वाली थी। वह राजा उस रानी से ऐसा शोभायमान होता था, जैसे कि कल्पलता से कल्पवृक्ष (ललितांग देव की देवी) स्वयंप्रभा उन दोनों के श्रीमती नाम से प्रसिद्ध पुत्री हुई। वह श्रीमती अपने रुप और सौन्दर्य की लाला से कामदेव की पताका के समान मालूम होती थी।

लोगों को परमानंद देने वाला वज्रजंघ और श्रीमती का विवाह गुरूजनों की साक्षीपूर्वक बड़े वैभव के साथ हुआ।

तत्पश्चात् दूसरे दिन अपना धार्मिक उत्साह प्रकट करने के लिए द्युक्ति हुआ। वज्रजंघ सायंकाल के समय अनेक दीपकों का प्रकाश कर महापूत चैत्सालय को गया।

अतिशय कान्ति का धारक वज्रजंघ आगे-आगे जा रहा था और श्रीमती उसके पीछे-पीछे जा रही थी।

वह वज्रजंघ पूजा की बड़ी भारी सामग्री साथ लेकर जिन-मंदिर पहुँचा। वह मंदिर मेरु पव्रत के समान ऊँचा था, क्योंकि उसके शिखर भी अत्यंत ऊँचे थे।

श्रीमती के साथ-साथ चैत्यालय की प्रतिक्षण देता हुआ वज्रजंघ ऐसा शोभायमान हो रहा था। जैसे कि महाकांति से युक्त सूर्य मेरूपर्वत की प्रदक्षिणा के बाद उसने ईर्ष्यापथ शुद्धि की, अर्थात् मार्ग में चलते समय होने वाली शारीरिक अशुद्धता को दूर किया तथा प्रमादवश होने वाली जीवहिंसा को दूर करने के लिए प्रायश्चित आदि किया। अनन्तर अनेक विभूतियों को धारण करने वाले जिनमंदि के भीतर प्रवेश कर वहाँ महातपस्वी मुनियों के दर्शन किये और उनकी वंदना की। गंधकुटी के मध्य में विराजमान जिनेन्द्रदेव की सुवर्णमयी प्रतिमा की अभिषेकपूर्वक चंदन आदि द्रव्यों से पूजा की।

राग-द्वेष से रहित मुनिसमूह की भी क्रम से पूजा की। तदन्तर श्री जिनेन्द्र देव के गुणों का बार-बार स्मरण करता हुआ वह वज्रजंघ राज्यादि की विभूति प्राप्त करने के लिए हर्ष से श्रीमती के साथ-साथ अनेक ऋद्धियों से शोभायमान पुण्डरीकिणी नगरी में प्रविष्ट हुआ।

वहाँ भरतभूमि के बत्तीस हजार मुकुटबुद्ध राजाओं ने उस लक्ष्मीवान् वज्रजंघ का राज्याभिषेक पूव्रक भारी सम्मान किया। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हुए हजारों राजाओं के द्वारा बार-बार प्राप्त हुई कल्याण परमपरा का अनुभव करते हुए और श्रीमती के साथ उतममोतम भोग भोगते हुए वज्रजंघ ने दीर्घकाल तक उसी पुण्डरीकिणी नगरी में निवास कियां

एक दिन महाकान्तिमान महाराज बज्रबाहु मल की छतरपुर बैठे हुए शरद् ऋतु के बादलों का उठाव देख रहे थे। उन्होंने पहले जिस बादल को उठता हुआ देखा था, उसे तत्काल में विलीन हुआ देखकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया।

चचंल लक्ष्मी को छोड़ने के अभिलाषी बुद्धिमान राजा बज्रबाहु ने अपने पुत्र वज्रजंघ का अभिषेक कर उसे राज्यकार्य में नियुक्त किया।

वज्रजंघ पिता की राज्य विभूति प्राप्त कर प्रजाा को प्रसन्न करता हुआ चिरकाल तक अनेक प्रकार के भोग भोगता रहा।

एक दिन बड़ी विभूति के धारक तथा अनेक राजाओं से घिरे हुए महाराज वज्रदंत सिंहासन पर सुख में बैठे हुए थे कि इतने में ही वनपाल ने एक नवीन खिला हुआ सुगन्धित कमल लाकर बड़े हर्ष से उनके हाथ में अर्पित किया। उन्होंने उसे अपने हाथ में लिया और अपने कर कमल से घुमाकर बड़ी प्रसन्नता के साथ सूघा, उस कमल के भीतर उसकी सुंगन्धि का लोभी एक भ्रमर रूककर मरा हुआ पड़ा था। ज्यों ही बुद्धिमान महाराज ने उसे देखा, त्यों ही वे विषयभोगों से विरक्त हो गये।

विषयभोगों से विरक्त होकर चक्रवर्ती ने अपने साम्राज्य का भार अपने अमिततेज नामक पुत्र के लिए देना चाहा और राज्य देने की इच्छा से उससे बार-बार आग्रह भी किया, परन्तु वह राज्य लेने को तैयार नहीं हुआ। इसके तैयार न होने पर इसके छोटे भाइयों से कहा गया, परन्तु वे भी तैयार नहीं हुए।

अमिततेज ने कहा - हे देव! जब आप ही इस राज्य को छोड़ना चाहते हैं, तब यह हमें नहीं चाहिए। मुझे यह राज्यभार व्यर्थ मालूम होता है। हे पूज्य! मैं आपके साथ ही तपोवन को चलूँगा। इससे आपकी आज्ञाभंग न हो इसलिये साथ जाने को तैयार है। हमने यह निश्चय किया है कि जो गति आपकी है, वही गति मेरी भी है। तदनन्तर, वज्रदन्त चक्रवर्ती ने पुत्रों का राज्य नहीं लेने का दृढ़ निश्चय जानकर अपना राज्य, अमिततेज के पुत्र पुण्डरीक के लिए दे दिया। उस समय व पुण्डरीक छोटी अवस्था का थ और वहीं संतान की परिपाटी का पालन करने वाला था।

लक्ष्मीमती को इस बात की चिन्ता हुई कि इतने बड़े राज्य का एक छोटा सा बालक स्थापित किया गया है। यह हमारा पौत्र है। बिना किसी पक्ष की सहायता से मैं इसकी रक्षा किस प्रकार कर सकूँगी ? मैं यह समाचार आज ही बुद्धिमान वज्रजंघ के पास भेजती हूँ। उनके द्वारा अधिष्ठित हुआ इस बालक का यह राज्य अवश्य ही निष्कंटक हो जायेगा, अन्यथा इस पर आक्रमण कर बलवान् राजा इसे अवश्य ही नष्ट कर देंगे।

ऐसा निश्चय कर लक्ष्मीमती ने गन्धर्वपुर के राजा मंदरमाली और रानी सुंदरी के चिन्तागति और मनोगति नामक दो विद्याधर पुत्र बुलाये। इन दोनों को एक पिटारे में रखकर समाचार पत्र दिया तथा दामाद और पुत्री को देने के लिए अनेक प्रकार की भेंट दी। इस प्रकार दोनों को वज्रजंघ के पास भेज दिया। प्रत्येक क्षण मार्ग की शोभा को देखते हुए वे दोनों अनुक्रम से उत्पलखेटक नगर जा पहुँचे। वह नगर संगीत काल में होने वाले गंभीर शब्दों से दिशाओं को बधिर (बहरा) कर रहा था। जब वे दोनों भाई राजमंदिर के समीप पहुँचे, तब द्वारपाल उन्हें भीतर ले गये। उन्होंने राजमन्दिर में प्रवेश कर राजसभा में बैठे हुए वज्रजंघ के दर्शन किये। उन दोनों विद्याधरों ने उन्हें प्रणाम किया और फिर उनके सामने, लायी हुई भेंट तथा जिसके भीतर पत्र रखा हुआ है, ऐसा रत्नमय पिटारा रख दिया। महाराज वज्रजंघ ने पिटारा खोलकर उसके भीतर रखा हुआ आवश्यक पत्र ले लिया। उसे देखकर उन्हें चक्रवर्ती के दीक्षा लेने का निर्णय हो गया और इस बात से वे बहुत विस्मित हुए। वे विचारने लगे कि - अहो! चकवर्ती बड़ा ही पुण्यात्मा हैं, जिसने इतने बड़े साम्राज्य के वैभव को छोड़कर पवित्र अंगवाली स्त्री के समान दीक्षा धारण की है। अहो! चक्रवर्ती के पुत्र भी बड़े पुण्यशाली और अचिन्त्य साहस के धारक हैं, जिन्होंने इतने बड़े राज्य को ठुकराकर पिता के साथ ही दीक्षा धारण की है। फूले हुए कमल के समान मुख की कान्ति का धारक बालक पुण्डरीक राज्य के इस महान भार को वहन करने के लिये नियुक्त किया गया है। रानी लक्ष्मीमती राज्य में शांति रखने के लिए शीघ्र ही मेरा सन्निधान चाहती हैं, अर्थात् मुझे बुला रही हैं।

इस प्रकार कार्य करने में चतुर बुद्धिमान वज्रजंघ ने पत्र के अर्थ का निश्चय कर स्वयं निर्णय कर लिया और अपना निर्णय श्रीमती को समझा दिया। तदनन्तर खूब आदर-सत्कार के साथ उन दोनों विद्याधर दूतों को उन्होंने आगे भेज दिया और स्वयं उनके पीछे प्रस्थान करने की तैयार की।

मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन इन चारों महामंत्री, पुरोहित राजसेठ और सेनापतियों ने तथा और भी चलने के लिए उद्यघृत हुए प्रधान पुरूषों ने आकर राजा-व्रजजंघ को उस प्रकार घेर लिया था, जिस प्रकार की कहीं जाते समय इन्द्र को देव लोग घेर लेते हैं। उस कार्यकुशल वज्रजंघ ने उसी दिन शीघ्र ही प्रस्थान कर दिया। नगर से बाहर निकलती हुई वह सेना वन को पार करते हुए क्रम-क्रम से शष्प नामक सरोवर पर जा पहुँची।

जब समस्त सेना अपने-अपने स्थान पर ठहर गयी, तब राजा वज्रजंघ मार्ग तय करने में चतुर शीघ्रगामी घोड़े पर बैठकर शीघ्र ही अपने डेरे में जा पहुँचे। जहाँ सरोवर के जल की तरंगों से उठती हुई मंद वायु के द्वारा भारी शीतलता विद्यमान थी। ऐसे तालाब के किनारे पर बहुत ऊँचे तम्बू में राजा वज्रजंघ ने सुखपूर्वक निवास किया।

तदनन्तर आकाश के गमन करने वाले श्रीमान दमधर नामक मुनिराज, सागरसेन नामक मुनिराज के साथ-साथ वज्रजंघ के पड़ाव में पधारे। उन दोनों मुनियों ने वन में ही आहार लेने की प्रतिज्ञा की थी।

इसलिए इच्छानुसार विहार करते हुए वज्रजंघ के डेरे के समीप आये। वे मुनिराज अतिशय कान्ति के धारक थे, ओर पापकर्मो से रहित थे। इसलिये ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों स्वर्ग और मोक्ष के साक्षात् मार्ग की हों, ऐसे दोनों मुनियों को राजा वज्रजंघ ने दूर से ही देखा। जिन्होंने अपनी शरीर की दीप्ति से वन का अंधकार नष्ट कर दिया है ,ऐसे दोनों मुनियों को राजा वज्रजंघ ने संभ्रम के साथ उठकर पड़गाहन किया। पुण्यात्मा वज्रजंघ ने रानी श्रीमती के साथ बड़ी भक्ति से उन दोनों मुनियों को हाथ जोड़ अर्ध्य दिया और फिर नमस्कार कर भोजनशाला में प्रवेश कराया। वहाँ वज्रजंघ ने उन्हें ऊँचे स्थान पर बैठाया, उनके चरणकमलों का प्रक्षालन किया, पूजा की, नमस्कार किया, अपने मन, वचन, कार्य को शुद्ध किया और फिर श्रद्धा तृष्टि, भक्ति, अलोभ, क्षमा ज्ञान और शक्ति इन गुणों से विभूषित होकर विशुद्ध परिणामों से उन गुणवान् दोनों मुनियों को विधिपूर्वक आहार दिया। उसके फलस्वरूप पआश्चर्य हुए।

तदनन्तर वज्रजंघ, जब दोनों मुनिराजों को वंदना और पूजा वापस भेज चुका, तब उसे अपने कंचुकी के कहने से मालूम हुआ कि उक्त दोनों मुनि हमारे ही अंतिम पुत्र हैं। राजा वज्रजंघ श्रीमती के साथ-साथ बड़े प्रेम से उनके निकट गया और पुण्य प्राप्ति की इच्छा से सद्गृहस्थों का धर्म सुनने लगा।

दान, पूजा, शील और प्रोषध आदि धर्मो का विस्तृत स्वरूप सुन चुकने के बाद वज्रजंघ ने उनसे अपने तथा श्रीमती के पूर्व भव पूछे। उनमें से दमधर नाम के मुनि अपने दाँतों की किरणों से दिशाओं में प्रकाश फैलाते हुए उन दोनों के पूर्वभव कहे। इस प्रकार राजा वज्रजंघ ने श्रीमती के साथ अपने पूर्वभव सुनकर कौतूहल से अपने इष्ट संबंधियों के पूर्वभव पूछे - हे नाथ! ये मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन मुझे अपने भाई के समान अतिशय प्यारे हैं। इसलिए आप प्रसन्न होइए और इनके पूर्वभव कहिए। इस प्रकार राजा का प्रश्न सुनकर उत्तर में मुनिराज ने सर्वप्रथम मतिवर मंत्र का पूर्व भव सुनाया। उसके उपरांत आनन्द पुरोहित का पूर्वभव कहने लगे।

**आनन्द पुरोहित का पूर्वभव -**

हे राजन! इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में एक वत्सकावती नामका देश हे, जो कि स्वर्ग के समान सुन्दर है। उसमें प्रभाकरी नाम की नगरी है। प्रभाकरी नगरी का राजा प्रतिवर्धन अपने प्रतिकूल खड़े हुए छोटे भाई

को जीतकर लौटा और एक पर्वत पर आकर ठहर गया। वह वहाँ अपने छोटे भाइ्र के साथ बैठा हुआ था कि इतने में पुरोहित ने उससे कहा कि आज यहाँ आपको मुनिदान के प्रभाव से बड़ा भारी लाभ होने वाला है। हे राजन! वे मुनिराज यहाँ किस प्रकार प्राप्त हो सकेंगे। इसका उपाय मैं अपने दिव्यज्ञान से जानकर आपके लिए कहता हूँ, सुनिए –

हम लोग नगर में यह घोषणा दिलाये देते हैं कि आज राजा के बड़े भारी हर्ष का समय है। इसलिए समस्त नगरवासी लोग अपने-अपने घरों पर पताकाएँ फहराओं, तोरण बाँधों और घर के आँगन तथा गलियों में सुगंधित जल सींचकर इस प्रकार फूल बिखेर दो कि बीच में कहीं कोई स्थान खाली न रहे। ऐसा करने से नगर में जाने वाले मुनि अप्रासुक होने के कारण नगर को अपने विहार के अयोग्य समझ लौटकर यहाँ पर अवश्य ही आयेंगे। पुरोहित के वचनों से संतुष्ट होकर राजा प्रीतिवर्धन ने वैसा ही किया, जिससे मुनिराज लौटकर वहाँ आये। पिहिता स्रनाम के मुनिराज एक महीने के उपवास समाप्त कर आहार के लिए भ्रमण करते हुए क्रम-क्रम से प्रतिवर्धन के घर में प्रविष्ट हुए। राजा ने उन्हें विधिपूर्वक आहार दान दिया, जिससे देवों ने आकाश से रत्नों की वर्षा की और रत्न मनोहर शब्द करते हुए अतिशय शांत हो गये। इन सभी ने राजा के द्वारा दिये हुए पात्रदान की अनुमोदना की थी। इसलिए आयु समाप्त होने पर वे उत्तरकुरू भोगभूमि में आर्य हुए। और आयु के अंत में ऐशान स्वर्ग में लक्ष्मीवान देव हुए। उनमें से मंत्री कांचन नामक विधान में कनकांभ नाम का देव हुआ, पुरोहित रूषित नाम के विमान में प्रभंजन नाम का देव हुआ और सेनापति प्रभा नामक विमान में प्रभाकर नाम का देव हुआ।

आपकी ललितांग देव की पर्याय में ये सब आपके ही परिवार के देव थे। कनकप्रभ का जीवन श्रुतकीर्ति और अनंतमती का पुत्र होकर अपना आनन्द नाम का प्रिय पुरोहित हुआ है। इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर राजा वज्रजंघ और श्रीमती दोनों ही धर्म के विषय में अतिशय प्रीति को प्राप्त हुए। इस प्रकार चारण ऋषिधारी मुनिराज के वचन सुनकर राजा वज्रजंघ का शरीर हर्ष से रोमांचित हो उठा, जिससे ऐसा मालूम होता था मानों अकुरों से व्याप्त ही हो गया हो। तदनन्तर राजा उन दोनों मुनिराजों को नमस्कर कर रानी श्रीमती और अतिशय प्रसन्न, आनंद आदि के साथ अपने डेरे पर लौट आया।

तदनन्तर वहाँ से कितने ही पड़ाव चलकर वे पुण्डरीकिणी नगरी में जा पहुँचे। वहाँ जाकर राजा वज्रजंघ ने शोक से पीड़ित हुई सती लक्ष्मीपती देवी को देखा और भाई के मिलने की उत्कंठा से सहित अपनी छोटी बहिन अनुन्धरी को भी देखा। दोनों को धीरे-धीरे आश्वासन देकर समझाया तथा पुण्डरीक के राज्य को निष्कंटक कर दिया। उसने साम, दाम, दण्ड, भेद आदि उपायों से समस्त प्रजा को अनुरक्त किया और सरदारों तथा आश्रित राजाओं का भी सम्मान कर उन्हें पहले की भाँति अपने-अपने कार्यो में नियुक्त कर दिया। तत्पश्चात् प्रात:कालीन सूर्य के समान दैदीप्यमान पुण्डरीक बालक को राज्य-सिंहासन पर बैठाकर और राज्य की सब व्यवस्था सुयोग्य मंत्रियों को हाथ सौंपकर राजा वजंजंघ लौटकर अपने उत्पलखेटक नगर आ पहुँचें।

एक दिन वह वज्रजंघ अपने शयनागार में कोमल, मनोहर और गंगा नदी के बालूदार तट के समान सुशोभित रेशमी चद्दर से उज्जवल शय्या पर शयन कर रहा था। जिस शयनागार में वह शयन करता था, वह कृष्ण अगुरू की बनी हुई उत्कृष्ट धूप के धूप से धूम से अत्यन्त सुगंधित हो रहा था, मणिमय दीपकों के प्रकाश से उसका समस्त अंध ाकार नष्ट नहीं हो गया था। शयनागार को सुगंधित बनाने और केशों का संस्कार करने के लिए उस भवन में अनेक प्रकार की सुगंधित धूप जल रहा थी। भाग्यवश उस दिन सेवक लोग झरोखे के द्वार खोलना भूल गये थे। इसलिए वह धूप उसी शयनागार में रूकता रहा। निदान, केशों के संस्कार के लिए जो धूप जल रहा था, उसके उठते हुए से वे दोनों

पति–पत्नी क्षण भर में मूर्च्छित हो गये। उस घूम से उन दोनों की श्वांस रूक गई, जिससे अंत:करण में उन दोनों को कुछ व्याकुलता हुई। अंत में मध्यरात्री के समय वे दोनों ही दम्पत्ति दीर्घ निद्रा को प्राप्त हो गये। सदा के लिए सो गये, मर गये।

इधर आनन्द आदि चारों ही जीव श्रीमती और वज्रजंघ के विरह से भारी शोक को प्राप्त हुए और अंत में चारों ने ही श्रीदृढ़धर्म नाम के आचार्य के समीप उत्कृष्ट जिनदीक्षा धारण कर ली। और चारों ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चरित्र रूपी सम्पदा की आराधना कर अपनी–अपनी आयु के अनुसार स्वर्ग लोक गये। वहाँ तप के प्रभाव से अधोग्रैवेयक के सबसे नीचे के विमान से (प्रथम ग्रैवेयक) अहमिन्द पद को प्राप्त हुए। सो ठीक ही है, तप अभीष्ट फलों को फलता है।

**राजपुत्र महाबाहु** -

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहे क्षेत्र में स्थित पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में वज्रसेन राजा और श्रीकांता रानी के राजमहल में आनंद पुरोहित का जीव जो अधोग्रैवेयक में अहमिन्द्र थे, वहाँ से च्युत होकर राजा वज्रसेन का सम्पत्तिशाली पुत्र हुआ। जिसका नाम महाबाहु था।

श्री वज्रसेन तीर्थंकर के समीप भव्यजीवों को ग्रहण करने योग्य ऐसी जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। महाबाहु ने जीवनपर्यन्त मन, वचन, काय से संपूर्ण हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री सेवन और परिग्रह से विरति धारण की थी अर्थात् अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँचों महाव्रत धारण किये थे।

व्रतों में स्थिर होकर पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं, पाँच समितियों और तीन गुप्तियों को भी धारण किया था। ईर्ष्या, भाषा, एषणा आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठान ये पाँच समितियाँ तथा कायगुप्ति वचनगुप्त और मनोगुप्ति ये तीन गुप्तियाँ दोनों मिलकर आठ प्रवचनमातृकाएँ कहलाती हैं। प्रत्येक मुनि को इनका पालन अवश्य ही करना चाहिए। ऐसा इन्द्रसभा (समावशरण) की रक्षा करने वाले गणधरादि देवों ने कहा है। वह महाबाहु का जीव अंत में समाधिपूर्वक मरण कर सर्वाथसिद्धि पहुँचे और वहाँ अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुए।

**स्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र** -

स्वार्थसिद्धि नाम का विमान लोक के अंतभाग से बारह योजन नीचा है। सबसे अग्रभाग में स्थित और सबसे उत्कृष्ट है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई और गोलाई जम्बूद्वीप के बराबर है। यह स्वर्ग के तिरेसठ पटलों के अंत में चूड़ामणि रत्न के समान स्थित है। चूँकि उस विमान में उत्पन्न होने वाले जीवों के सब मनोरथ अनायास ही सिद्ध हो जाते है, इसलिए वह स्वार्थसिद्धि इस सार्थक नाम को धारण करता है।

अकृत्रिम और श्रेष्ठ रचना से शोभायमान रहने वाले उस विमान में उपपादशय्या पर वह देवन क्षणभर में पूर्ण शरीर को प्राप्त हो गया। दोष, धातु और मल के स्पर्श से रहित, सुंदर लक्षणों से युक्त तथा पूर्ण यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ उसका शरीर क्षणभर में ही प्रकट हो गया था। जिसकी शोभा कभी म्लान नहीं होती, जो स्वभाव से ही सुन्दर है और जो नेत्रों को आनन्द देना वाला है। ऐसा उसका शरीर ऐसा सुशोभित होता था, मानो अमृत के द्वारा ही बनाया गया हो। इस संसार में जो शुभ सुगंधित और चिकने परमाणु थे, पुण्योदय के कारण उन्हीं परमाणुओं से उसके शरीर की रचना हुई थी।

पर्याप्त पूर्ण होने के बाद उपपाद शय्या पर अपने ही शरीर की कान्ति रूपी चाँदनी से घिरा हुआ वह अहमिन्द्र ऐसा सुशोभित होता था, जैसा कि गंगा नदी के बालू के टीले पर अकेला बैठा हुआ तरूण हंस शोभायमान होता है।

उत्पन्न होने के बाद वह अहमिन्द्र निकटवर्ती सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था। उस समय वह ऐसा शोभायमान होता था, जैसे कि अत्यंत श्रेष्ठ निषध पर्वत के मध्य पर आश्रित हुआ सूर्य शोभायमान होता है। वह अहमिन्द्र अपने पुण्यरूपी जल के द्वारा केवल अभिषिक्त ही नहीं हुआ था, किन्तु शारीरिक गुणों के समान अनेक अलंकारों के द्वारा अलंकृत भी हुआ था। उसने अपने वक्षःस्थल पर केवल फूलों की माला ही धारण नहीं की थी, किन्तु जीवनपर्यन्त नष्ट नहीं होने वाली, साथ-साथ उत्पन्न हुई स्वर्ग की लक्ष्मी भी धारण की थी।

स्नान और विलेपन के बिना ही जिसका शरीर सदा दैदीप्यमान रहता है और जो स्वयं साथ-साथ उत्पन्न हुए वस्त्र तथा आभूषणों से शोभायमान है ऐसा वह अहमिन्द्र देवों के मस्तक पर ऐसा सुशोभित होता था मानों स्वर्गलोक का एक शिखामणि ही हों अथवा सूर्य ही हों, क्योंकि शिखामणि अथवा सूर्य भी स्नान और विलेपन के बिना ही दैदीप्यमान रहता है, और स्वभाव से ही अपनी प्रभाव द्वारा आकाश को भूषित करता रहता है।

शुक्ललेश्या के प्रभाव से अपने भोगों द्वारा संतोष को प्राप्त होने वाले अहमिन्द्रों को अपने निरूपद्रव सुखमय स्थान में जो उत्तम प्रीति होती है, वह उन्हें अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होती। यही कारण है कि उनकी परक्षेत्र में क्रीड़ा करने की इच्छा नहीं होती है। **'मैं ही इन्द्र हूँ'** मेरे सिवाय अन्य कोई इन्द्र नहीं हैं, इस प्रकार वे अपनी निरन्तर प्रशंसा करते रहते हैं और इसलिए वे उत्तमदेव अहमिन्द्र नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होते है।

उन अहमिन्द्र में न तो परस्पर में असूया है, न पर निन्दा है, न आत्म प्रशंसा है औ न ईर्ष्या ही है। वे केवल सुखमय होकर हर्षयुक्त होते हुए निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं।

वह महाबाहु का जीव अहमिन्द्र अपने आत्मा के अधीन उत्पन्न हुए उत्कृष्ट सुख को धारण करता था, तैंतीस सागर प्रमाण उसकी आयु थी और स्वयं अतिशय दैदीप्यमान था।

वह समचतुरस्र संस्थान से अत्यंत सुंदर, एक हाथ ऊँच और हंस के समान श्वेत शरीर को धारण करता था। वह साथ-साथ उत्पन्न हुए दिव्य वस्त्र दिव्य माला और दिव्य आभूषणों से विभूषित जिस मनोहर शरीर को धारण करता था, वह ऐसा जान पड़ता था मानो सौन्दर्य का समूह ही हो।

उस अहमिन्द्र की वेशभूषा तथा विलास-चेष्टाएँ अत्यंत प्रशांत थी, मनोहर थी, उत्कृष्ट थी और धीर थी। इसके सिवाय वह स्वयं अपने शरीर के फैलती प्रभारूपी क्षीरसागर में सदा निमग्न रहता था।

वह अहमिन्द्र तैंतीस हजार वर्ष व्यतीत होने पर मानसिक दिव्य आहार ग्रहण करता हुआ धैर्य धारण करता था। और सोलह महीने पन्द्रह दिन व्यतीत होने पर श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था। इस प्रकार वह अहमिन्द्र वहाँ सुखपूर्वक निवास करता है।

अपने अवधिज्ञानरूपी दीपक के द्वारा त्रसनाड़ी में रहने वाले जानने योग्य मूर्तिक द्रव्यों को उनकी पर्यायों सहित प्रकाशित करता हुआ वह अहमिन्द्रक अतिशय शोभायमान होता था। उस अहमिन्द्र वहाँ सूखपूर्वक निवास करता था।

अपने अवधिज्ञानरूपी दीपक के द्वारा त्रसनाड़ी में रहने वाले जानने योग्य मूर्तिक द्रव्यों को उनकी पर्यायों सहित प्रकाशित करता हुआ वह अहमिन्द्र अतिशय शोभायमान होता था। उस अहमिन्द्र के अपने अवधिज्ञान के क्षेत्र के बराबर विक्रिया करने की सामर्थ्य थी, परन्तु वह राग रहित होने के कारण बिना प्रयोजन कभी विक्रिया नहीं करता था।

उसका मुख कमल के समान था, नेत्र झील के समान थे, गाल चन्द्रमा के तुल्य थे और अधर बिम्बफल की कान्ति को धारण करता था।

स्वार्थसिद्धि में वे अहमिन्द्र मोक्षतुल्य सुख का अनुभव करते हुए प्रवीचार के बिना ही चिरकाल तक सुखी रहते थे।

इस संसार में जीवों को सुख-दुख होते हैं, वे दोनों ही अपने-अपने कर्मबंध के अनुसार हुआ करते हैं, ऐसा श्री अरिहंत देव ने कहा है। वह कर्मपुण्य और पाप के भेद से दो प्रकार का कहाँ गया है। जिस प्रकार खाये हुए एक ही अन्न का मधुर और कटुक रूप में दो प्रकार का विपाक देखा जाता है, उसी प्रकार उन पुण्य और पापरूपी कर्मों का भी क्रम से मधुर और कटुक विपाक फल देखा जाता है।

पुण्यकर्मों का उत्कृष्ट फल स्वार्थसिद्धि में और पाप-कर्मो का उत्कृष्ट फल सप्तम पृथिवी के नारकियों के जानना चाहिए। पुण्य का उत्कृष्ट फल परिणामों को शांत रखने, इन्द्रियों का दमन करने और निर्दोष चरित्र पालन करने से पुण्यात्मा जीवों को प्राप्त होता है ओर पाप का उत्कृष्ट फल परिणामों को शांत नहीं रखने, इन्द्रियों का दमन नहीं करने तथा निर्दोष चरित्र पालन नहीं करने से पापी जीवों को प्राप्त होता हैं।

जिस प्रकार बहुत ही शीघ्र जिनेन्द्र लक्ष्मी प्राप्त करने वाले इस महाबाहु ने शम, दम और थम की विशुद्धि के लिए आलस्यरहित होकर श्री जिनेन्द्र देव की कल्याण करने वाली आज्ञा का चिन्तवन किया था, उसी प्रकार से अनुपम सुख से अभिलाषी दु:ख के भार को छोड़ने की इच्छा करने वाले, बुद्धिमान विद्वान पुरूषों को भी शम, दम, यम की विशुद्धि के लिए आलस्यरहित होकर कल्याण करने वाली श्री जिनेन्द्रदेव की आज्ञा का चिन्तन करना चाहिए।

# स्वप्नदर्शन

अथानन्तर किसी समय सुनंदा महादेवी राजमहल में सो रही थी। सोते समय उसने स्वप्न में चन्द्रमा से सहित सूर्य, हंस से सहित सरोवर तथा चंचल लहरों वाला समुन्द्र देखा, स्वप्न देखने के बाद मंगल-पाठ पढ़ते हुए बंदीजनों के शब्द सुनकर वह जाग पड़ी।

उस समय बंदीजन इस प्रकार मंगल-पाठ पढ़ रहे थे कि - हे, दूसरों का कल्याण करने वाली और स्वयं सैकड़ों कल्याणों को प्राप्त होने वाली देवी! अब तू जाग, क्योंकि तू कमलिनी के समान शोभा धारण करने वाली है - इसलिए यह तेरा जागने का समय है।

हे माता! समुन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा और सरोवर आदि जो अनेक मंगल करने वाले शुभ स्वप्न देखे हें, वे तुम्हारे आनन्द

के लिए हों।

हे देवी! इधर तुम्हारे घर में तुम्हारा मंगल करने की इच्छा से यह कुब्जक तथा वामन आदि का परिवार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिए जिस प्रकार मानसरोवर पर रहने वाली, राजहंस पक्षी की प्रिय वल्लभा-हंसी नदी का किनारा छोड़ देता है, उसी प्रकार भगवान वृषभदेव के मन में रहने वाली और उनकी प्रिय वल्लभा तू भी शय्या छोड़।

इस पकार जब बन्दीजनों के समूह जोर-जोर से मंगल पाठ पढ़ रहे थे तब वह सुनंदा महादेवी जगाने वाले दुन्दुभियों के शब्दों से धीरे-धीरे निद्रारहित हुई जाग उठी।

# स्वप्नफल

शय्या छोड़कर प्रातःकाल मंगलस्नान कर प्रीति से रोमांचित शरीर हो अपने देखे हुए स्वप्नों का यथार्थ फल पूछने के लिए संसार के प्राणियों के हृदयवर्ती अंधकार को दूर करने वाले अतिशय प्रकाशमान और सबके स्वामी भगवान ऋषभदेव के समीप उस प्रकार पहुँची, जिस प्रकार कमलिनी संसार के मध्यवर्ती अंधकार को नष्ट करने वाले और अतिशय प्रकाशमान सूर्य के सम्मुख पहुँचती है। भगवान के समीप जाकर वह महादेवी अपने योग्य सिंहासन पर सुखपूव्रक बैठ गयी। उस समय महादेवी साक्षात् लक्ष्मी के समान सुशोभित हो रही थी।

तदनन्तर उसने रात्रि के समय देखे हुए समस्त स्वप्न भगवान से निवेदन किये और अवधिज्ञान रूपी दिव्य नेत्र धारण करने वाले भगवान ने उन स्वप्नों को फल कहा -

हे देवी! स्वप्नों में जो तूने सूर्य और चन्द्रमा देखा है, उससे मालूम होता है कि तेरे प्रतापी ओर कान्तिरूपी सम्पदा को सूचित कर रहा है। हे कमलनयने! सरोवर के देखने से तेरा पुत्र अनेक पवित्र लक्षणों से चिन्हित शरीर होकर अपने विस्तृत वक्षःस्थल पर कमलवासिनी-लक्ष्मी को धारण करने वाला होगा। और समुन्द्र देखने से प्रकट होता है कि वह चरमशरीरी होकर संसाररूपी समुन्द्र को पार करने वाला होगा। इस प्रकार प्रति के वचन सुनकर उस समय वह देवी हर्ष के उदय से ऐसी वृद्धिको प्राप्त हुई थी, जैसी कि चन्द्रमा का उदय होने पर समुन्द्र की बेला वृद्धि को प्राप्त होती है।

तदनन्तर आनन्द पुरोहित की जीव जो पहले प्रभंजन था, उसके पूर्व आर्य था, उसके बाद अहमिन्द्र हुआ, वहाँ से आकर वज्रसेन का पुत्र महाबाहु हुआ फिर स्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था, वहाँ से च्युत होकर सुनंदा महादेवी के गर्भ में आकर निवास करने लगा।

वह देवी भगवान वृषभदेव के दिव्य प्रभाव से उत्पन्न हुए गर्भ को धारणय कर रही थी। यही कारण था कि वह अपने ऊपर आकाश में चलते हुए सूर्य को भी सहन नहीं करती थी।

जिस प्रकार वर्षा का समय आने पर मयूर जल से भरी हुई मेघमाला को बड़ी ही उत्सुक दृष्टि से देखते हैं उसी प्रकार वृषभदेव भी उस गर्भिणी सुनंदा देवी को बड़ी ही उत्सुक दृष्टि से देखते थे। वह सुनंदा देवी जिसके गर्भ में रत्न भरे हुए हैं, ऐसी भूमि के समान, जिसके मध्य में फल लगे हुए हैं, ऐसी बेल के समान अथवा जिसके मध्य में सूर्यरूपी तेज छिपा हुआ है, ऐसी पूर्व दिशा के समान अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रही थी।

वह रत्नखचित पृथिवी पर हंसी की तरह नूपुरों के उदार शब्दों से मनोहर शब्द करती हुई मन्द-मन्द गमन करती थी। मणियों से जड़ी हुई जमीन पर स्थिरतापूर्वक पैर रखकर मन्दगति से चलती हुई वह सुनंदा ऐसी जान पड़ती थी, मानों पृथिवी हमारे ही भोग के लिए हैं, ऐसा मानकर उस पर मुहर ही लगायी जाती थी।

उसके उदर पर गर्भावस्था से पहले की तरह ही गर्भावस्था में भी वलीभंग अर्थात् नाभि से नीचे पड़ने वाली रेखाओं का भंग नहीं दिखाई देता था। (यद्यपि स्त्रियों के गर्भावस्था में उदर की वृद्धि होने से वलीभंग हो जाता है, परन्तु विशिष्ट स्त्री होने के कारण सुनंदा के वह चिन्ह प्रकट नहीं हुआ था।)

परम उत्कृष्ट दोहला स्त्री उत्पन्न होना, आलस्यरहित गमन करना, शरीर को शिथिल कर जमीन पर सोना, मुख का गालों तक कुछ-कुछ सफेद हो जाना, आलस भरे नेत्रों से देखना, अधरोष्ठ का कुछ सफेद और लाल होना और मुख से मिट्टी जैसी सुगंध आना। इस प्रकार सुनंदा के शीघ्र ही विजय करता हुआ वह गर्भ धीरे-धीरे बढ़ता जाता था।

# श्री बाहुबली का जन्म

जिसका मुखमण्डल दैदीप्यमान तेज से परिपूर्ण है और जिसका उदय बहुत ही बड़ा है, ऐसे सूर्य को जिस प्रकार पूर्व दिशा उत्पन्न करती हैं, उसी प्रकार नौ महीने व्यतीत होने पर सुनंदा महादेवी ने दैदीप्यमान तेज से परिपूर्ण और महापुण्यशाली पुत्र को उत्पन्न किया।

भगवान् वृषभदेव के जन्म समय में जो शुभ दिन, शुभ लग्न, शुभ योग, शुभ चन्द्रमा और शुभ नक्षत्र आदि पड़े थे, वे ही शुभ दिन आदि उस समय भी पड़े थे, अर्थात् उस समय चैत्र कृष्ण नवमी का दिन, मीन लग्न, ब्रह्मयोग धनु राशि का चन्द्रमा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र था। उसी दिन महादेवी सुनंदा के शुभ लक्षणों से शोभायमान पुत्र को उत्पन्न किया था।

वज्रजंघ की पर्याय में भगवान वृषभदेव की जो अनुन्धरी नाम की बहिन थी, वह अब उन्हीं वृषभदेव की सुनंदा नामक देवी से अत्यंत सुंदरी 'सुंदरी' नाम की पुत्री हुई। सुंदरी पुत्री और बाहुबली पुत्र को पाकर सुनंदा महारानी ऐसी सुशोभित हुई थी, जिस प्रकार कि पूर्व दिशा प्रभा के साथ-साथ सूर्य को पाकर सुशोभित होती है।

वह पुत्र चन्द्रमा के समान सौम्य था, इसलिए माता सुनंदा उस पुत्ररूपी चन्द्रमा से रात्रि के समान सुशोभित हुई थी और वह पुत्र प्रातःकाल के सूर्य के समान तेजस्वी था, इसलिए पिता-ऋषभदेव उस बालक रूपी सूय्र से दिन के समान दैदीप्यमान हुए थे। जिस प्रकार चन्द्रमा का उदय होने पर अपनी बेलासहित समुन्द्र हर्ष को प्राप्त होता है, उसी प्रकार पुत्र का जन्म होने पर उसके दादा और दादी अर्थात् महारानी मरूदेवी और महाराज नाभिराज दोनों ही परम हर्ष को प्राप्त हुए थे।

उस समय अधिक हर्षित हुई पुत्रवती स्त्रियाँ पवित्र आशीर्वादों से उस सुनंदा देवी का बढ़ा रही थी। उस समय राजमंदिर में करोड़ो दण्डों से ताड़ित हुए आनंद के बडे-बड़े नगाड़े गरजते हुए मेघों के समान गंभीर शब्द कर रहे थे। तुरही, दुन्दुभि, झल्लरी, शहनाई, सितार, शंख, काहल और ताल आदि अनेक बाजे उस समय मानों हर्ष से ही शब्द कर रहे थे।

उस समय सुगंधित, विकसित, भ्रमण करते हुए भौंरों से सेवित और देवों के हाथ से छोड़ा हुआ फूलों का

समूह आकाश से पड़ रहा था। कल्पवृक्षों के पुष्पों से भारी पराग से भरा हुआ, धूलि को दूर करने वाला और जल के छीटों से शीतल हुआ सुकोमल वायु मन्द-मन्द बह रहा था। उस समय आकाश में जय-जय इस प्रकार की देवों की वाणी बढ़ रही थी और देवियों के 'चिरजीव रहो' इस प्रकार के शब्द समस्त दिशाओं में अतिशय रूप से विस्तार को प्राप्त हो रहे थे। जिन्होंने अपने सौन्दर्य से अप्सराओं को जीत लिया है और जिन्होंने अपनी नृत्यकला से देवों की नृत्यकियों को अनायास ही पराजित कर दिया है, ऐसी नृत्य करने वाली स्त्रियाँ बढ़ते हुए ताल के साथ नृत्य तथा संगीत प्रारम्भ कर रही थी।

उस समय चंदन के जल से सींची गयी अयोध्या नगर की गलियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानो अपनी सजावट के द्वारा स्वर्ग की शोभा की हँसी ही कर रही हों। उस समय आकाश में इन्द्रधनुष और बिजली रूपी लता की सुन्दरता को धारण करते हुए रत्ननिर्मित तोरणों की सुंदर रचनाएँ घर-घर शोभायमान हो रही थी।

जहाँ रत्नों के चूर्ण से अनेक प्रकार के वेलबूटों की रचना की गयी है, ऐसी भूमि पर बड़े-बड़े उदारवाले अनेक सुवर्णकलश रखे हुए थे। उन कलशों के मुख सुवर्ण कमलों से ढ़के हुए थे, इसलिए वे बहुत ही शोभायमान हो रहे थे। जिस प्रकार समुन्द्र की वृद्धि होने से उसके किनारे की नदी भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार राजा के घर उत्सव होने से वह समस्त अयोध्या नगरी उत्सव से सहित हो रही थी।

उस समय भगवान ऋषभदेवरूपी हाथी समुन्द्र के जल के समान भारी दान की धारा बरसा रहे थे, इसलिए वहाँ कोई भी दरिद्र नहीं था। इस प्रकार अन्तःपुर सहित समस्त नगर में परम आनंद को उत्पन्न करता हुआ वह बालक रूपी चन्द्रमा भगवान ऋषभदेव रूपी उदयाचल से उदय हुआ था।

उस समय प्रेम से भरे हुए बंधुओं के समूह ने बड़े भारी हर्ष से उस पुत्र को बाहुबली नाम से पुकार था।

## बाहुबली का बाल्यरूप

वह बालकरूपी चन्द्रमा भाई-बन्धुरूपी कुमुदों के समूह में आनन्द को बढ़ता हुआ और शत्रुओं के कुलरूपी अंधकार को नष्ट करता हुआ शोभा को बढ़ा रहा था। माता सुनंदा के स्तन का पान करता हुआ वह बाहुबली जब कभी दूध के कुरले को बार-बार उगलता था, तब वह ऐसा दैदीप्यमान होता था, मानों अपना यश ही दिशाओं में बाँट रहा हो। वह बालक मन्द हास्य, मनोहर हास्य, मणिमयी भूमि पर चलना और अव्यक्त मधुर भाषण आदि लीलाओं से माता-पिता के परम हर्ष को उत्पन्न करता था।

जैसे-जैसे वह बालक बढ़ता जाता था, वैसे-वैसे ही उसके साथ-साथ उत्पन्न हुए-स्वाभाविक गुण भी बढ़ते जाते थे, ऐसा मालूम होता था मानों वे गुण उसकी सुन्दरता पर मोहित होने के कारण ही उसके साथ-साथ बढ़ रहे थे। विधि को जानने वाले भगवान् वृषभदेव ने अनुक्रम से अपने उस पुत्र के अन्नप्राशन (पहली बार अन्न खिलाना), चौल (मुण्डन) और उपनयन (यज्ञोपवीत) आदि संस्कार स्वयं किये थे।

# कामदेव बाहुबली का युवा रूप

**तत्कालकामदेवोऽभूद् युवा बाहुबली बली।**
**रूपसंपदमुतङ्ग, दधानोऽसुमतां मताम्।।9।।**

**(षोडशं पर्व/आदिपुराण)**

समस्त जीवों को मान्य तथा सर्वश्रेष्ठ रूपसम्पदा को धारण करने वाला बलवान युवा बाहुबली उस काल के चौबीस कामदेवों में से पहला कामदेव हुआ था।

उस बाहुबली का जैसा रूप था, वैसा अन्य कहीं नहीं दिखाई देता था, सो ठीक ही हैं तो उत्तम आभूषण कल्पवृक्ष को छोड़कर क्या कहीं अन्यत्र भी पाये जाते हैं? उसके भ्रमर के समान काले तथा कुटिल केशों के अग्रभाग कामदेव के सिर के कवच के सूक्ष्म लोह के गोल तारों के समान शोभायमान होते थे। अष्टमी के चन्द्रमा के समान सुन्दर उसका विस्तृत ललाट ऐसी शोभा धारण कर रहा था, मानो ब्रह्मा ने राज्यपट्ट को बाँधने के लिए ही उसे बनाया हो। दोनों कुण्डलों से शोभायमान उसका मुख ऐसा दैदीप्यमान जान पड़ता था, मानों जिसके दोनों और समीप ही चकवा-चकवी बैठे हों, ऐसा कमल ही हो। मन्द हास्य की किरणरूपी जल से पूर से भर हुआ तथा लक्ष्मी के निवास करने से अत्यन्त पवित्र और उसका मुखरूपी सरोवर जल के पूर से भरा हुआ तथा लक्ष्मी के निवास करने से अत्यन्त पवित्र उसका मुखरूपी सरोवर जल के पूर से भरा हुआ तथा लक्ष्मी के निवास करने से अत्यन्त पवित्र उसका मुखरूपी सरोवर नेत्ररूपी दोनों कमलों से भारी सुशोभित होता था।

वह राजकुमार बाहुबली अपने वक्षःस्थल पर लटकते हुए विजयछन्द नामक हार से निर्झरनों-द्वारा शोभायमान मरकत-मणिमय पर्वत की शोभा बढ़ा रहे थे, मानों किसी द्वीप के पर्यत भाग में विद्यमान दो छोटे-छोटे पर्वत ही हों।

**बाहू तस्य महाबाहोरधातां बलमूर्जितम्।**
**यतो बाहुबलीत्यासीत नामास्य महसांनिधेः।।7।।**

**(षोडशं पर्व/आदिपुराण)**

लम्बी भुजाओं को धारण करने वाले और तेज के भंडारस्वरूप उस राजकुमार की दोनों ही भुजाएँ उत्कृष्ट बल को धारण करती थी, इसीलिए उसका बाहुबली नाम सार्थक हुआ था।

जिस प्रकार कुलाचल पर्वत अपने मध्य भाग में लक्ष्मी के निवास करने योग्य बड़ा भारी सरोवर धारण करता है, उसी प्रकार वह बाहुबली अपने शरीर के मध्यभाग में गंभीर नाभिमण्डल धारण करता था। करधनी से घिरा हुआ उसका कटिप्रदेश ऐसा सुशोभित होता था, मानों किसी बड़े सर्प से घिरा हुआ अत्यंत ऊँचे सुमेरू पर्वत का विस्तृत तट ही हो। केले के खम्भे के समान शोभायमान उसके दोनों उरू ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों लक्ष्मी की हथेली के निरन्तर स्पर्श से ही अत्यन्त उज्ज्वल हो गये हों, पराक्रम से सुशोभित उस बाहुबली की दोनों ही जंघाएँ शुभ थीं। शुभ लक्षणों से सहित थीं और जान पड़ती थीं, मानों वह बाहुबली भविष्यत् काल में जो प्रतिमायोग तत्पश्चरण धारण करेगा, उसके सिद्ध करने के लिए कारण ही हों।

उसके दोनों ही चरण लाल कमल की शोभा धारण कर रहे थे, क्योंकि जिस प्रकार कमल कोमल होता है, उसी प्रकार उसके चरणों के तलवे भी कोमल थे, कमलों में जिस प्रकार पंखुडियाँ सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार उसके चरणों में अंगुलियाँ रूपी दल सुशोभित थे, कमल जिस प्रकार लाल होता है, उसी प्रकार उसके चरण भी लाल थे और कमलों पर जिस प्रकार लक्ष्मी निवास करती है, उसी प्रकार उसके चरणों में भी लक्ष्मी निवास करती थी।

इस प्रकार उदार और चरम शरीर को धारण करने वाला वह बाहुबली मानिनी स्त्रियों के हृदयरूपी छोटी-सी कुटी में कैसे प्रवेश कर गया था?

**भावार्थ** - स्त्रियों का हृदय बहुत ही छोटा होता है और बाहुबली का शरीर बहुत ही ऊँचा (सवा पाँच सौ धनुष) था, इसके सिवाय वह चरमशरीर (पक्ष में उसी भव से मोक्ष जाने वाला) था, इन सब कारणों के रहते हुए भी उसका वह शरीर स्त्रियों का मान दूरकर उनके हृदय में प्रवेश कर गया, यह भारी आश्चर्य की बात थी। जिनका मन दूसरी जगह नहीं जाकर केवल बाहुबली में ही लगा हुआ है, ऐसी स्त्रियाँ स्वप्न में भी उस बाहुबली के रूप को इस प्रकार देखती थी, मानों वह रूप उनके चित्त में उकेर भी दिया गया हो।

**मनोभवो मनोजश्च, मनोभूर्मन्मथोऽङ्गज।**
**मदनोऽनन्यजश्चेति, व्याजह्रुस्तं तदाङ्गनाः।।25।।**

**(षोडशं पर्व/आदिपुराण)**

उस समय स्त्रियाँ उसे मनोभाव, मनोज, मनोभू, मन्मथ, अंगज, मदन और अनन्यज आदि नामों से पुकारती थी।

ईख की जिसका धनुष है, ऐसा कामदेव अपने पुष्पों की मंजरी रूप बाणों से समस्त जगत् का संहार कर देता है, इस युक्तिरहित बात पर भला कौन विश्वास करेगा?

**भावार्थ** - कामदेव के विषय में ऊपर लिखे अनुसार जो किंवदन्ती प्रसिद्ध है, वह सर्वथायुक्ति रहित है। हाँ, बाहुबली जैसे कामदेव ही अपने अलौकिक बल और पौरूष के द्वारा जगत् का संहार कर सकते हैं।

# विद्याध्ययन

किसी एक समय भगवान् वृषभदेव सिंहासन पर सुख से बैठे हुए थे, कि उन्होंने अपना चित्त कला और विद्याओं के उपदेश देने में व्याप्त किया। उसी समय उनकी ब्राह्मी और सुंदरी नाम की पुत्रियाँ उनके निकट पहुँची, दोनों कन्याओं ने विनय के साथ भगवान् के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया।

दूर से ही जिनका मस्तक नम्र हो रहा है, ऐसी नमस्कार करती हुई उन दोनों पुत्रियों को उठाकर भगवान ने प्रेम से अपनी गोद में बैठाया, उनके सिर पर हाथ फेरा। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव क्षणभर: उन दोनों पुत्रियों के साथ क्रीड़ा कर फिर कहने लगे कि तुम अपने शील और विनय गुण के कारण युवावस्था में भी वृक्ष के समान हो। तुम दोनों का यह शरीर, यह अवस्था और यह अनुपम शील यदि विद्या से विभूषित किया जाये तो तुम दोनों का जन्म सफल हो सकता है।

**विद्यावान् पुरूषों लोके, समतिं याति कोविदैः।**
**नारी च तद्धति धते, स्त्रीसृष्टे रग्रिमं पदम्।।98।।**

**(षोडशं पर्व/आदिपुराण)**

इस लोक में विद्यावान पुरूष पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है।

**विद्या यशस्करी पुंसा, विद्या श्रेयस्करी मता।**
**सम्यगारधिता विद्यादेवता कामदायिनी।।99।।**

**(षोडशं पर्व/आदिपुराण)**

विद्या ही मनुष्यों का यश करने वाली हैं, विद्या ही पुरूषों का कल्याण करने वाली है, अच्छी तरह से आराधना की गयी विद्यादेवता ही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली है।

**विद्या कामदुहा धेनुर्विद्या चिन्तामणिर्नृणाम्।**
**त्रिवर्गफलितां सूते, विद्या संपत् परम्पराम्।।100।।**

**(षोडशं पर्व/आदिपुराण)**

विद्या मनुष्यों को पूर्ण करने वाली कामधेनु हैं, विद्या ही चिन्तामणि हैं, विद्या ही धर्म, अर्थ तथा काम रूप फल से सहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न करती है।

**विद्या बन्धुश्च मित्रं च, विद्या कल्याणकारकम्।**
**सहयायि धनं विद्या, विद्या सर्वार्थसाधनो।।101।।**

विद्या ही मनुष्य का बंधु हैं, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ-साथ जाने वाला धन है और विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है।

इसलिए हे पुत्रियों! तुम दोनों विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो, क्योंकि तुम दोनों के विद्या ग्रहण करने का यही काल है।

भगवान वृषभदेव ने ऐसा कहकर तथा बार-बार उन्हें आशीर्वाद देकर अपने चित्त में स्थित श्रुतदेवता को आदरपूर्वक सुवर्ण के विस्तृत पट्टे पर स्थापित किया, फिर दोनों हाथों से अ-आ आदि वर्णमाला लिखकर उन्हें लिपि (लिखने का) उपदेश दिया और अनुक्रम से इकाई, दहाई आदि अंकों के द्वारा उन्हें संख्या के ज्ञान का भी उपदेश दिया। ऐसी प्रसिद्धि है कि भगवान् ने दाहिनें हाथ से वर्णमाला और बायें हाथ से संख्या लिखी थी।

जो भगवान् के मुख से निकली हुई हैं, जिसमें **'सिद्ध नमः'** इस प्रकार का मंगलाचरण अत्यन्त स्पष्ट है, जिसका नाम सिद्धमातृका है, जो स्वर और व्यंजन के भेद से दो भेदों को प्राप्त होता है, जो समस्त विद्याओं में पायी जाती है, जिसमें अनेक संयुक्त अक्षरों की उत्पत्ति है, जो अनेक बीजाक्षरों से व्याप्त है, और जो शुद्ध मोतियों की माला के समान है, ऐसी आकार को आदि लेकार हकार पर्यन्त तथा विसर्ग, अनुस्वार जिह्वामूलीय और उपध्मानीय इन अयोगवाहपर्यन्त समस्त शुद्ध अक्षरावली को बुद्धिमती ब्राह्मी पुत्री ने धारण किया और अतिशय सुंदरी देवी ने इकाई,

दहाई आदि स्थानों के क्रम से गणितशास्त्र को अच्छी तरह धारण किया।

ब्राह्मी और सुंदरी दोनों पुत्रियों की पदज्ञान (व्याकरण ज्ञान) रूपी दीपिका से प्रभावित हुई, समस्त विद्याएँ और कलाएँ अपने आप ही परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो गयी थी। इस प्रकार अपने पिता के अनुग्रह से जिनने समस्त विद्याएँ पढ़ ली हैं, ऐसी वे दोनों पुत्रियाँ सरस्वती देवी के अवतार लेने के लिए पात्रता को प्राप्त हुई थी।

जगद्गुरु भगवान वृषभदेव ने इसी प्रकार अपने भरत आदि पुत्रों को भी विनयी बनाकर क्रम से आम्नाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये। भगवान् ने भरत पुत्र के लिए अत्यन्त विस्तृत बड़े-बड़े अध्यायों से स्पष्ट कर अर्थशास्त्र और संग्रह (प्रकरण) सहित नृत्यशास्त्र पढ़ाया था।

स्वामी वृषभदेव ने अपने पुत्र वृषभसेन के लिए जिसमें गाना बजाना आदि अनेक पदार्थों का संग्रह है और जिसमें सौ से अधिक अध्याय है, ऐसे गन्धर्व शास्त्र का व्याख्यान किया था।

अनन्तविजय पुत्र के लिए नाना प्रकार के सैकड़ों अध्यायों से भरी हुई चित्रकला संबंधी विद्या का उपदेश दिया और शोभारहित समस्त कलाओं का निरूपण किया। इसी अनन्तविजय पुत्र के लिए उन्होंने सूत्रधारण की विद्या तथा मकान बनाने की विद्या का उपदेश दिया। उस विद्या के प्रतिपादक शास्त्रों में अनेक अध्यायों का विस्तार थाि, तथा उसके अनेक भेद थे।

**कामनीतिमथ स्त्रीणां पुरूषाणां च लक्षणम्।**
**आयुर्वेद धनुर्वेदं, तन्त्रं चाश्वेभगोचरम्।।23।।**
**तथा रत्नपरीक्षां च, बाहुबल्याख्यसूनवे।**
**वचख्यौ बहुधाम्नातैर ध्यायैरति विस्तृतैः।।124।।**

**(षोडशं पर्व/आदिपुराण)**

बाहुबली पुत्र के लिए उन्होंने कामनीति, स्त्री-पुरूषों के लक्षण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, घोड़ा-हाथी आदि के लक्षण जानने के तन्त्र और रत्नपरीक्षा आदि के शास्त्र अनेक प्रकार के बड़े-बड़े अध्यायों के द्वारा सिखलाये।

इस विषय में अधिक कहने से क्या प्रयोजन है? संक्षेप में इतना ही बस है कि लोक का उपकार करने वाले जो-जो शास्त्र थे, भगवान् आदिनाथ ने वे सब अपने पुत्रों को सिखलाये थे। जिस प्रकार स्वभाव से दैदीप्यमान रहने वाले सूर्य का तेज शरदऋतु के आने पर और अधिक हो जाता है, उसी प्रकार जिन्होंने अपनी समस्त विद्याएँ भी प्रकाशित कर दी हैं, ऐसे भगवान् वृषभदेव उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जिस प्रकार शरदऋतु में अधिक कान्ति को प्राप्त होने वाला सूर्य अपनी किरणों से सुशोभित होता है।

# बाहुबली को युवराज पद की प्राप्ति

किसी एक दिन सैकड़ों राजाओं से घिरे हुए भगवान् वृषभदेव विशाल सभामण्डप के मध्यभाग में सिंहासन कर ऐसे विराजमान थे, जैसे निषध पर्वत के तटभाग पर सूर्य विराजमान होता है। उस प्रकार सिंहासन पर विराजमान भगवान् की सेवा करने के लिए इन्द्र, अप्सराओं और देवों के साथ, पूजा की सामग्री लेकर वहाँ आया। और अपने तेज से उदयांचल के मस्तक पर स्थित सूर्य को जीतता हुआ अपने योग्य सिंहासन पर जा बैठा।

भक्तिविभोर इन्द्र ने भगवान् की आराधना करने की इच्छा से उस समय अप्सराओं और गन्धर्वों का नृत्य कराना प्रारम्भ किया। उस नृत्य ने भगवान् वृषभदेव के मन को अनुरक्त बना दिया था। सो ठीक ही है, अत्यन्त शुद्ध स्फटिक मणि भी अन्य पदार्थों के संसर्ग से राग अर्थात् लालिमा धारण करता है। भगवान् राज्य और भोगों से किस प्रकार विरक्त होगें ? यह विचार कर इन्द्र ने उस समय नृत्य करने के लिए एक ऐसे पात्र को नियुक्त किया, जिसकी आयु अत्यन्त क्षीण हो गयी थी।

तदनन्तर वह अत्यन्त सुंदरी नीलांजना नाम की देवी नृत्य की रस, भाव और लय सहित फिरकी लगाती हुई नृत्य कर रही थी कि इतने में ही आयु रूपी दीपक के क्षय होने से वह क्षणभर में अदृश्य हो गयी। जिस प्रकार बिजलीरूपी लता देखते-देखते क्षणभर में नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार प्रभा से चंचल और बिजली के समान उज्जवल मूर्ति को धारण करने वाली वह देवी देखते-देखते ही क्षण भर में नष्ट हो गयी थी। उसके नष्ट होते हुए इन्द्र ने रसभंग के भय से उस स्थान पर उसी के समान शरीर वाली दूसरी देवी खड़ी कर दी, जिससे नृत्य ज्यों का त्यों चलता रहा। यद्यपि दूसरी देवी खड़ी कर देने के बाद भी वहीं मनोहर स्थान था, वहीं मनोहर भूमि थी और वहीं नृत्य का परिक्रम था, तथापि भगवान् ऋषभदेव ने उसी समय उसके स्वरूप का अंतर जान लिया था। तदनन्तर भोगों से विरक्त और अत्यन्त संवेग तथा वैराग्य भावना को प्राप्त हुए भगवान के चित्त में इस प्रकार चिन्ता उत्पन्न हुई। यह बड़े आश्चर्य की बात हैं कि जगत विनश्वर है, लक्ष्मी बिजली रूपी लता के समान चंचल है, रूप, यौवन, शरीर, आरोग्य, और ऐश्वर्य आदि सभी चलाचल है। रूप, यौवन और सौभाग्य के मद से उन्मत्त हुआ अज्ञ पुरूष इन सब में स्थिर बुद्धि करता है, परन्तु उनमें कौन सी वस्तु विनश्वर नहीं हैं? अर्थात् सभी वस्तुएँ विनश्वर है। इसलिए इस रूप को धिक्कार है, इस असार संसार को धिक्कार हैं, इस राज्य भोग को धिक्कार है और बिजली के समान चंचल इस लक्ष्मी को धिक्कार है।

इस प्रकार जिनकी आत्मा विरक्त हो गयी है, ऐसे भगवान् वृषभदेव भोगों से विरक्त हुए और काललब्धि को पाकर शीघ्र ही मुक्ति के लिए उद्योग करने लगे।

अथानन्तर समस्त इन्द्र अपने वाहनों और अपने-अपने निकाय के देवों के साथ आकाशरूपी आँगन को व्याप्त करते हुए आये और अयोध्यापुरी के चारों और आकाश को घेरकर अपने-अपने निकाय के अनुसार ठहर गये। तदनन्तर इन्द्रादिक देवों ने भगवान के निष्क्रमण अर्थात् तपःकल्याणक करने के लिए उनका क्षीरसागर के जल से महाभिषेक किया। अभिषेक कर चुकने के बाद देवों ने बड़े आदर के साथ दिव्य आभूषण, वस्त्र, मालाएँ और मलयागिरी चंदन से भगवान का अलंकार किया।

**ततोऽभिषिंच्य साम्राज्ये, भरतं सुनुमग्रिमम्।**
**भगवान् भारतं वर्षं, तत्सनाथं व्यधादिदम्।।76।।**
**यौवराज्ये च तं बाहुबलिनं समतिष्ठिपत्।**
**तदा राजन्वतीत्यासीत् पृथ्वी ताभ्यामधिष्ठिता।।77।।**

**(सप्तदशं पर्व/आदिपुराण)**

भगवान् ऋषभदेव ने साम्राज्य पद पर बड़े पुत्र भरत का अभिषेक कर इस भारतवर्ष को उनसे सनाथ किया और युवराज पद पर बाहुबली को स्थापित किया। इस प्रकार उस समय यह पृथिवी उक्त दोनों भाइयों से अधिष्ठित

होने के कारण राजवन्ती अर्थात् सुयोग्य राजा से सहित हुई थी।

उस समय एक और तो बड़े वैभव के साथ भगवान् के निष्क्रमण कल्याणक का उत्सव हो रहा था और दूसरी और भरत और बाहुबली इन दोनों राजकुमारों के लिए पृथिवी का राज्य समर्पण करने का उत्सव किया जा रहा था। एक और तो राजर्षि-भगवान वृषभदेव तपरूपी राज्य के लिए कमर बाँधकर तैयार हुए थे और दूसरी और तरूण कुमार राज्यलक्ष्मी के विवाह करने के लिए उद्यत कर रहे थे।

एक और तो देवों के शिल्पी भगवान् को वन में ले जाने के लिए पालकी का निर्माण कर रहे थे और दूसरी और वास्तु विद्या अर्थात् महल, मण्डल आदि बनाने की विधि जानने वाले शिल्पी राजकुमारों के अभिषेक के लिए बहुमूल्य मण्डल बना रहे थे।

एक और तो इन्द्राणी देवी ने रंगावली आदि की रचना की थी। रंगीन चौक पूरे थे और दूसरी ओर यशस्वती तथा सुनन्दा देवी ने बड़े हर्ष के साथ रंगावली आदि की रचना की थी, तरह-तरह के सुंदर चौक पूरे थे।

एक और तो दिक्कुमारी देवियाँ मंगल द्रव्य धारण किए हुई थीं और दूसरी और वस्त्राभूषण पहने हुई उत्तम वरांगनाएँ लीलापूर्वक पदविन्यास करती हुई नृत्य कर रही थी। एक और समस्त दिशाओं को व्याप्त करने वाले देवों के बाजों के महान शब्द हो रहे थे और दूसरी और नान्दी, पटह आदि मांगलिक बाजों के घोर शब्द सब और फैले रहे थे। एक और किन्नर जाति के देवों के द्वारा प्रारम्भ किये हुए मनोहर मंगल गीतों के शब्द हो रहे थे और दूसरी और अन्त:पुर की स्त्रियों के मंगलगानों की मधुर ध्वनि हो रही थी। एक और करोड़ों देवों का जय-जय ध्वनि का कोलाहल हो रहा था और दूसरी और पुण्य-पाठ करने वाले करोड़ों मनुष्यों के पुण्य-पाठ का शब्द हो रहा था।

इस प्रकार दोनों ही बड़े-बड़े उत्सवों में जहाँ देव और मनुष्य व्याप्त हो रहे हैं, ऐसा वह राजमंदिर परम आनन्द से व्याप्त हो रहा था। उसमें सब ओर हर्ष दिखाई देता था। भगवान् ने अपने राज्य का भार दोनों ही युवराजों को समर्पित कर दिया था। इसलिए उस समय उनका दीक्षा लेने का उद्योग बिल्कुल ही निराकुल हो गया था। उन्हें राज्यसम्बंधी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रही थी।

# चक्ररत्न का रूकना

सेना के आगे चन्द्रध्वज आदि के साथ में चक्ररत्न जा रहा था। देखते समय ऐसा मालूम हो रहा है कि साक्षात् सूर्य ही चल रहा हो। पोदनपुर के पास से जिस समय चक्रवर्ती की सेना जा रही थी। एकदम वह चक्ररत्न रूक गया। उस चक्ररत्न का नियम है कि जिस राज्य में चक्रवर्ती के भक्तराजा हैं, वहाँ तो आगे बढ़ता है और जहाँ का राजा चक्रवर्ती के लिए अनुकूल नहीं है, वहाँ वह आगे बढ़ नहीं सकता है, चक्र के एकदम रूकने से सबको आश्चर्य हुआ।

भरतेश्वर ने मंत्री को बुलाकर पूछा कि मंत्री चक्ररत्न क्यों रूक गया। उत्तर में मंत्री ने कहा कि आपके छोटे भाई बाहुबली आदि को आकर नमस्कार करने की जरूरत है। इसलिए वह रूक गया है।

सेना को वहीं पर मुकाम करने का आदेश दिया। बाद में बाहुबली को छोड़कर बाकी भाइयों को भरतेश्वर ने विजयपत्र भेजा व सूचित किया। आप लोग आकर मुझसे मिलें व मेरी अधीनता को स्वीकार करें। उन भाइयों को

पत्र देखकर दु:ख हुआ। राज्य के लोभ का उन्होंने परित्याग किया। उनके मन में विचार आया जब कि जब हमारे पिता के द्वारा दिए हुए राज्य हमारे पास हैं तो फिर हमें दूसरों के अधीन होकर रहने की क्या आवश्यकता हैं? उत्तर में कुछ न बोलकर सीधा कैलाश-पर्वत की ओर गए। वहाँ पर पूज्य पिता श्री आदिप्रभु के चरणों में दीक्षित हुए।

# भरत का पश्चाताप और विचार

अथानन्तर भुजाओं के गर्व से शोभायमान युवा बाहुबली को वश करने के लिए चक्रवर्ती का मन कुछ चिन्ता से आकुल हुआ। वह विचारने लगा कि यह हमारे भाइयों का समूह एक ही कुल में उत्पन्न होने से अपने-आपको अवध्य मानता हुआ हमारे आनन्द का अभिन्दन नहीं करता है अर्थात् हमारे आनन्द-वैभव से ईर्ष्या रखता हैं। हमारे भाइयों के समूह का यह विश्वास है कि हम सौ भाई अवश्य है। इसीलिए ये प्रणाम करने से विमुख होकर मेरे शत्रु हो रहे हैं। किसी शत्रु के प्रणाम न करने कपर मुझे वैसा खेद नहीं होता, जैसा कि घर के भीतर रहने वाले मिथ्याभिमानी भाईयों के प्रणाम नहीं करने से हो रहा है।

अनिष्टवचनरूपी अग्नि से उद्दीपित हुए मुखों से जो अत्यन्त धूमसहित हो रहे हैं और जो प्रतिकूलतारूपी वायु से प्रेरित हो रहे हैं, ऐसे में मेरे निजी भाई अलात-चक्र की तरह मुझे जला रहे हैं। जिन्हें हमने बालकपन से ही स्वतन्त्रतापूर्वक खिला-पिलाकर बड़ा किया है, ऐसे अन्य कुमार यदि मेरे विरूद्ध आचरण करने वाली हो तों खुशी से हों परन्तु बाहुबली तरूण, बुद्धिमान, परिपाटी को जानने वाला, विनयी, चतुर और सज्जन होकर भी मेरे विषय में विकार को कैसे प्राप्त हो गया?

जो अतिशय बलवान् हैं, मानरूपी धन से युक्त है, और विजय का अंग स्वरूप जिसकी भुजाओं का बल युद्ध के अग्रभाग मं बड़ा प्रशंसनीय गिना जाता है, ऐसे बाहुबली को इस समय किस प्रकार अपने अनुकूल बनाना चाहिए? जो भुजाओं के बल से शोभायमान है और अभिमानरूपी मन से उद्यत हो रहा है। ऐसा यह बाहुबली किसी मदोन्मत बड़े हाथी के समान अनुनय अर्थात् शान्तिसूचक कोमल वचनों के बिना वश नहीं हो सकता। यह अंहकारी बाहुबली सामान्य संदेशों से वश नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर में घुसा हुआ दुष्ट पिशाच मंत्र विद्या में चतुर पुरूषों के बिना वश नहीं हो सकता। शेष क्षत्रिय युवाओं में और बाहुबली में बड़ा भारी अंतर है, साधारण हरिण यदि पाश में पकड़ लिया जाता है तो क्या उससे सिंह भी पकड़ा जा सकता है? अर्थात् नहीं। वह नीति में चतुर होने से अभेद्य है, अर्थात् फोड़ा नहीं जा सकता, पराक्रमी है, इसलिए युद्ध में भी वश नहीं किया जा सकता और उसका आशय अत्यन्त विकारयुक्त हो रहा है। इसलिए उसके साथ शांति का भी प्रयोग नहीं किया जा सकता।

जिस प्रकार यज्ञ की अग्नि घी की आहुति पड़ने से और भी अधिक प्रज्ज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार वह तेजस्वी बाहुबली स्नेह अर्थात् प्रेम से उपकृत होकर और भी अधिक प्रज्ज्वलति हो रहा है। जिस प्रकार हाथी के शरीर पर लगायी हुई चमड़ी को कोमल करने वाली औषधि कुछ काम नहीं करती, उसी प्रकार स्वभाव से ही कठोर रहने वाले इस बाहुबली के विषय में साम उपाय को प्रयोग करना भी कुछ काम नहीं देगा। जो मेरी आज्ञा से विमुख हैं, जिन्होंने राज्यभोग छोड़ दिये हैं और जो वन में जाने के लिए उन्मुख हैं, ऐसे बाकी समस्त राजकुमारों ने इसका अभिप्राय प्राय: प्रकट की कर दिया है। यद्यपि यह सब है, तथापि फिर भी कोमल वचनों के द्वारा उसकी परीक्षा करेंगे। यदि ऐसा करने पर भी नमीभूत नहीं हुआ तो फिर आगे क्या करना चाहिए? इसका विचार करना चाहिए। भाईपने के कपट से जिसके अंतरंग में विकार छिपा हुआ है और जिसका कोई प्रतिकार नहीं है। ऐसा यह बाहुबली

घर के भीतर उठी हुई अग्नि के समान समस्त कुल को भस्म कर देगा। जिस प्रकार वृक्षों की शाखाओं से अग्रभाग की रगड़ से उत्पन्न हुई अग्नि पर्वत का विघात करने वाली होती है, उसी प्रकार भाई आदि अंतरंग प्रकृति से उत्पन्न हुआ प्रकोप राजा का विघात करने वाली होती है। यह बलवान बाहुबली इस समय प्रतिकूलता को प्राप्त हो रहा है। इसलिए इसका शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिए, क्योंकि क्रूर ग्रह के समान इसके शांत हो जाने पर ही मुझे शांति हो सकती है।

ऐसा निश्चय कर चक्रवर्ती ने कार्य को जानने वाले, मंत्र करने में चतुर तथा नि:सृष्टार्थता से सहित दूत को बाहुबली के समीप भेजा। जो उम्र में न तो बहुत छोटा था और न बहुत बड़ा ही था। ऐसा वह दूत अपने योग्य रथ पर सवार होकर नम्रता के वेष से बाहुबली के समीप चला। जिसने मार्ग में काम आने वाले भोजन आदि की समस्त सामग्री अपने साथ ले रखी है और जो प्रेम करने वाला है, ऐसे अपने ही समान एक सेवक से अनुगत होकर वह दूत वहाँ से शीघ्र ही चला।

एक दूत मार्ग में विचार करता जाता था कि यदि वह अनुकूल बोलेगा तो मैं भी अपनी प्रशंसा किये बिना ही अनुकूल बोलूंगा और यदि वह विरूद्ध होकर युद्ध की बात करेगा तो मैं युद्ध नहीं होने के लिए उद्द्योग करूँगा। यदि वह सन्धि अथवा पणबंध (कुछ भेंट देना आदि) करना चाहेगा तो मेरा यह अंतरंग ही है, अर्थात् मैं भी यहीं चाहता हूँ कि इसके सिवाय यदि विह चक्रवर्ती को जीतने की इच्छा करेगा तो मैं भी कुछ पराक्रम दिखाकर शीघ्र वापस लौटा आऊँगा।

इस प्रकार जो अपने पक्ष की सम्पत्ति और दूसरे पक्ष की विपत्ति का विचार करता जाता था, जो अपने मंत्र को छिपाकर रखने से दूसरे मंत्रियों के द्वारा कभी फोड़ा नहीं जा सकता था और जो मंत्र भेद के डर से पड़ाव पर किसी एकांत स्थान में गुप्त रीति से शयन करता था, ऐसा वह दूत युद्ध करने तथा उससे निकलने की भूमियों को देखता हुआ बहुत दूर निकल गया। क्रम-क्रम से अनेक देश, नदी और देशों की सीमाओं का उल्लंघन करता हुआ वह दूत बाहुबली के पोदनपुर नामक नगर में जा पहुँचा।

# पोदनपुर नगरी की शोभा

पोदनपुर नगर के बाहर धानों से युक्त मनोहर पृथिवी को पाकर और पके हुए चावलों के खेतों को देखता हुए वह दूत बहुत ही आनन्द को प्राप्त हुआ था। जो बहुत से फलों से शोभायमान हैं और किसानों के द्वारा बड़े यत्न से जिनकी रक्षा की जा रही है, ऐसे धान के गुच्छों को देखते हुए दूत ने मनुष्यों को बड़ा स्वार्थी समझा था।

जो खेतों को देखकर आनंद से नाच रहे हैं और खेत काटने के लिए जिन्होंने हँसिया ऊँचे उठा रखे हैं, ऐसे कुटुम्ब सहित किसानों के द्वारा प्रशंसनीय, खेत काटने के संघर्ष के लिए बजती तुरई के शब्दों को भी वह दूत सुन रहा था। कहीं धान के खेतों को वह दूत जिनके कुछ दाने तोताओं ने अपने मुख से खींच लिए हैं, ऐसी बालों के समूह इस प्रकार देखता था, मानों विट पुरूषों के द्वारा भोगी हुई स्त्रियाँ ही हो।

जो सुगंधित पान को सुगंधित के समान सुवासित अपनी श्वास की वायु से दशों दिशाओं को सुगंधित कर रही थीं, जिन्होंने धान की बालों से अपने कानों के आभूषण बनाये थे, जो परागसहित कमलों की रज से भरे हुए माँग से सुंदर तथा अच्छी तरह गुंथी हुई नीलकमलों की मालाओं से सुशोभित केशों की चोटियाँ बाँधे हुई थीं, जो घाम से दुखी: हुए मुख पर लगी हुई सौन्दर्य के छोटे-छोटे टुकड़ों के समान पसीने की बूंदों को धारण कर रही थीं, जिनके

शरीर तोते के पंखों के समान कांतिवाली हरी-हरी चोलियों से सुशोभित हो रहे थे, और जो मनोहर शब्द करती हुई छो-छो करके तोतों को उड़ा रही थीं ऐसी धान की रक्षा करने वाली स्त्रियाँ उस दूत ने देखीं।

जो चलते हुए कोल्हुओं के चीत्कार शब्दों के बहाने अत्यन्त पीड़ा से मानों रो ही रहे थे, ऐसे ईख के खेत उस दूत ने देखे। खेतों के समीप ही, बड़े भारी स्तन के भार से जो धीरे-धीरे चल रही हैं, जो बछड़ों के समूह से उत्कंठित हो रही हैं और जो दूध झरा रही हैं ऐसी नवीन प्रसूता गायें भी उसने देखी।

इस प्रकार इस नगर के मनोहर सीमा प्रदेशों को देखता हुआ और उन्हें देखकर आनंद प्राप्त करता हुआ वह दूत अपने आपको कृतार्थ मानने लगा। जिनके चारों और नहर की नालियों से पानी फैला हुआ है और जो धान, ईख और जीरे के खेतों से घिरी हुई हैं, ऐसी उस नगर के बाहर की पृथिवियाँ उस दूत का मन हरण कर रही थीं। बावड़ी, कुएँ, तालाब, बगीचे और कमलों के समूहों से उस नगर के बाहर के प्रदेश उस दूत को बहुत मनोहर दिखाई दे रहे थे।

नगर के गोपुर द्वार को उल्लंघन कर बाजार के मार्गो को देखता हुआ वह दूत वहाँ इकट्ठी की हुई रत्नों की राशियों को निधियों के समान मानने लगा। जो राजा की भेंट में आये हुए घोड़े और हाथियों की लार तथा मध्य जल से कीचड़ सहित हो रहा था उससे ऐसा मालूम होता है, मानों उस पर जल ही छींटा गया हो, ऐसे राजाओं के आँगन को देखकर वह दूत बहुत ही प्रसन्न हो रहा था। जिसने मुख्य-मुख्य द्वारपालों के द्वारा अपना वृतान्त कहला भेजा है, ऐसा वह दूत राजसिंहासन पर बैठे हुए महाराज बाहुबली के समीप जा पहुँचा।

# बाहुबली के द्वारा भरत की राजी-खुशी पूछना

वहाँ जाकर दूत ने महाराज बाहुबली को देखा, उनका वक्षःस्थल के किनारे के सामने चौड़ा था। वे स्वयं ऊँचे थे और उनका मुकुट शिखर के समान उन्नत था। इसलिए वे विजय-लक्ष्मी रूपी स्त्री के क्रीड़ा करने के लिए एक आद्वितीय पर्वत के समान जान पड़ते थे। जिस पर यह बंधा हुआ हैं ऐसे लम्बे चौड़े ललाट पट्ट को धारण करते हुए वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो विजयलक्ष्मी की उत्कृष्ट विवाह पट्टी ही धारण कर रहे हों।

वे बाहुबली स्वामी, जिसने समस्त राजाओं का यशरूपी धन तोल लिया है और जिसने समस्त पृथिवी का भार उठा रहा है, ऐसे तराजू के दण्ड के समान भुजदण्ड को धारण कर रहे थे। यद्यपि वे मुख से कमल की और नेत्रों से उत्पल की शोभा धारण कर रहे थे, तथापि उनके समीप न तो विजाति अर्थात् पक्षियों की जातियाँ थी और न वे स्वयं जलाशय अर्थात् सरोवर ही थे। वे बाहुबली जिन पर क्रम से सरस्वती देवी और लक्ष्मीदेवी का निरन्तर निवास रहता था, ऐसे अत्यन्त विस्तृत मन को वक्षःस्थल को धारण कर रहे थे और अन्य महापुरूषों के मन में धारण कराते थे। वे अपने दैदीप्यमान आभूषणों की कान्ति के छल से ऐसे जान पड़ते थे, कि मानों अपने विशाल प्रतापरूपी अग्नि से समस्त दिशाओं को लिप्त ही कर रहे हो।

वे चन्द्रकांतमणि के समान मुख से, पद्मिरागमणि के समान सुंदर चरणों से वज्र के समान सुदृढ़ अपने शरीर से बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे। उनकी कांति हरे रंग की थी। इसलिए वे ऐसे जान पड़ते थे मानो आदि ब्रह्माभ भगवान वृषभदेव के द्वारा लोक को सहारा देने के लिए बनाया हुआ हरित मणियों का एक खम्भा ही हो। समस्त शरीर में फैले हुए अतिशय श्रेष्ठ क्षात्रतेज को धारण करते हुए महाराज बाहुबली ऐसे जान पड़ते थे, मानो तेजरूप परमाणुओं से ही उनकी रचना हुई हो। जिसकी ज्वाला ऊपर की और उठ रही है, ऐसे तेज के पुंज के समान महाराज बाहुबली

को दूर से देखता हुआ वह चक्रवर्ती दूत अपने ध्यान से कुछ विचलित– सा हो गया अर्थात् घबरा सा गया।

दूर से ही झुके हुए शिरि को धारण करने वाले उस दूत ने जाकर कुमार के चरणों में प्रणाम किया और कुमार ने भी उसे सत्कार के साथ अपने समीप ही बैठाया। कुमार बाहुबली अपने मंद हास्य की किरणों को चारों और फैलाते हुए योग्य आसन पर बैठे उस भरत के दूत से इस प्रकार कहने लगे कि आज चक्रवर्ती ने बहुत दिनों में हम लोगों का स्मरण किया है, हे भद्र! जो समस्त पृथिवी के स्वामी है, और जिन्हें बहुत लोगों की चिन्ता रहती है ऐसे चक्रवर्ती की कुशल तो है न । जिसने समस्त क्षत्रियों को जीतने का उद्योग आज तक भी समाप्त नहीं किया है, ऐसे राजाधिराज भरतेश्वर की वह प्रसिद्ध दाहिनी भुजा कुशल है न। सुना है कि भरत ने समस्त दिशाएँ वश कर ली हैं और समस्त राजाओं को जीत लिया है। हे दूत! कहो अब भी उनको कुछ कार्य बाकी रहा है अथवा नहीं? इस प्रकार जो अत्यंत शांत हैं तेजस्वी हैं, साररूप है और जिनमें थोड़े अक्षर है, ऐसे वचन कहकर कुमार ने दूत को कहने के लिए अवसर दिया।

तदनन्तर दांतों की किरणों से शब्द और अर्थ दोनों को मिलाकर दिखलाता हुआ दूत मनोहर वचन कहने के लिए तैयार हुआ। वह कहने लगा कि हे प्रभो! आपके इस वचनरूपी दर्पण में आगे का कार्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, क्योंकि उसका अर्थ मुझ जैसा मूर्ख भी प्रत्यक्ष जान लेता है। हे नाथ! हम लोग तो दूत है। केवल स्वामी का समाचार ले जाने वाले हैं। हम लोग सदा स्वामी के अभिप्राय के अनुसार चलते हैं तथा गुण और दोषों का विचार करने में भी असमर्थ हैं। इसीलिए हे आर्य! चक्रवर्ती ने जो प्रिय और उचित आज्ञा दी है, वह अच्छी हो या बुरी, केवल कहने वाले के गौरव से ही स्वीकार करने योग्य हैं।

गुरु के वचन बिना तर्क–वितर्क के मान लेना चाहिए, यह जो शास्त्र का वचन है, उसे प्रमाण मानकर इस समय आपको चक्रवर्ती की आज्ञा स्वीकार कर लेनी चाहिए। वह भरत इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुआ है अथवा इक्ष्वाकु अर्थात् भगवान् वृषभदेव का पुत्र है, राजाओं में प्रथम है, आपका बड़ा भाई है और इसके सिवाय देवों से भी नमस्कार कराते हुए उसने समस्त–समस्त पृथिवी अपने वश कर ली है। उसने गंगा द्वार को उल्लंघन कर अकेले ही रथ पर बैठकर समुन्द्र को जिसकी चंचल लहरें एक दूसरे से टकरा रही हैं पार कर दिया। बाण के बहाने से इसकी प्रतापरूपी अग्नि समुन्द्र के जल में भी प्रज्ज्वलित रहती है, उस अग्नि ने केवल समुन्द्र को ही नहीं पिया है, किन्तु देवों का मान भी पी डाला है। भला देव लोग उसे कैसे न नमस्कार करेंगे? क्योंकि उसने बाण रूपी जाल से गले में बाँधकर उन्हे जबरदस्ती अपनी और खींच लिया था।

बारह योजन दूर तक जाने वाले उसके बाण ने महासागर में रहने वाले मगध देव के निवास स्थान को भी जबरदस्ती अपना निशाया बनाया था। व्यर्थ न जाने वाले बाण के द्वारा विजयार्द्ध पर्वत के स्वामी विजयार्द्ध देव को जीतने वाले उस भरत की विजय घोषणा देवों ने भी की थी। कृतमाल आदि देव उसकी अधीनता प्राप्त कर चुके हैं और उत्तर दक्षिण दोनों श्रेणियों के विद्याधरों ने भी उसकी उद्घोषणा की है।

जिसका अंधकार दूर कर दिया गया है ऐसे गुफा के दरवाजे को अपनी विजयी सेना के साथ उल्लघंन कर उसने विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर दिशा की भूमि पर भी अपना अधिकार कर लिया है। कुछ लोग यद्यपि उसकी आज्ञा नहीं मानना चाहते थे, तथापि उनके सेनापति के द्वारा अपनी सेना से हराकर और जबरदस्ती उनका धन छीनकर उन पर विजय प्राप्त की है। अच्छे–अच्छे देवों ने आकर उसका अभिषेक किया है और उनका यश बडे–बड़े पर्वतों के

शिखरों पर स्थलकमलों के समान सुशोभित हो रहा है।

गंगा–सिन्धु दोनों नदियों के देवताओं ने रत्नों के अर्ध्यों के द्वारा उसकी पूजा की है तथा वृषभाचल के तट पर उसने अपना यश टांकी से उकेरकर लिखा है। उसने लक्ष्मी के घटदासी अर्थात् पानी भरने वाली दासी के समान किया है। देव उसके सेवक हो रहे हैं, समस्त रनत उसके स्वाधीन हैं, निधियों उसे धन प्रदान करती रहती है और उसकी विजयी सेनाओं ने समस्त दिशाओं को जीतकर सब समुन्द्रों के किनारे के वनों की भूमि में भ्रमण किया है।

हे आयुष्मान! जगत् में मानवीय वहीं महाराज भरत अपने चक्रवर्ती पद को प्रसिद्ध करते हुए कल्याण करने वाले आशीर्वाद से आपका सम्मान कर आज्ञा कर रहे हैं कि समस्त द्वीप और समुन्द्रों तक फैला हुआ, यह हमारा राज्य हमारे प्रिय भाई बाहुबली के बिना शोभा नहीं देता है। सम्पतियाँ वहीं है, ऐश्वर्य वहीं हैं, भोग वहीं है और सामग्री वहीं है और सामग्री वही है, जिसे भाई लोग सुख के उदय को बाँटते हुए साथ–साथ उपभोग करें।

दूसरी एक बात यह है कि आपके प्रणाम करने से विमुख रहने पर जिसमें समस्त मनुष्य, देव, धरणेन्द्र और विद्याधर नमस्कार करते हैं, ऐसा उनका चक्रवर्तीपना भी सुशोभित नहीं होता है। प्रणाम नहीं करने वाला शत्रु स्वामी के मन को उतना अधिक दुखी: नहीं करता है, जितना कि अपने को झूठझूठ चतुर मानने वाला अभिमान से प्रणाम नहीं करने वाला भाई करता है। इसलिए आप किसी अपराध की क्षमा नहीं करने वाले महाराज भरत के समीप जाकार प्रणाम के द्वारा उनका सत्कार कीजिए, क्योंकि स्वामी को प्रणाम करना अनेक सम्पदाओं को उत्पन्न करने वाला है और यही सबका इष्ट हैं।

जिसकी आज्ञा कभी व्यर्थ नहीं जाती, ऐसे उस भरत की आज्ञा का जो कोई भी उल्लंघन करते है, उन शत्रुओं का शासन करने वाला उसका वह चक्ररत्न है, जिस पर स्वयं किसी का शासन नहीं चल सकता। आप भरत की आज्ञा का खण्डन करने से व्याकुल हुए इन मण्डलाधिपति राजाओं को देखिए, जो भयंकर दण्डरूपी वज्र के गिरने से खण्ड–खण्ड हो रहे हैं। इसलिए दे दीर्घायु कुमार! आप शीघ्र ही चलकर इसके मनोरथ पूर्ण कीजिए। आप दोनों भाईयों के मिलाप से यह समस्त संसार मिलकर रहेगा।

# बाहुबली का उत्तर

उस दूत के कह चुकने के बाद चतुर और जवान बाहुबली कुमार कुछ मन्द–मन्द हँसकर गंभीर अर्थ से भरे हुए धीर–वीर वचन कहने लगे। वे बोले कि – हे दूत! अपने स्वामी की साधुवृत्ति को प्रकट करते हुए तूने सब सच कहा है, क्योंकि जो अपने मत की पुष्टि करने वाला हो, वहीं कहना ठीक होता है। साम् अर्थात् शांति दिखलाते हुए तूने विशेष कर भेद और दण्ड भी दिखला दिये हैं ताा उनका प्रयोग करते हुए तूने यह भी बतला दिया कि तू अपना अथ्र सिद्ध करने में कितना स्वतन्त्र है।

इस प्रकार कहने लगा तू सचमुच ही अपने स्वतन्त्र स्वामी का अंतरग दूत है, यदि ऐसा न होता तो तू उसके हृदयगत अभिप्राय को कैसे प्रकट कर सकता था? चक्रवर्ती ने तुझ पर समस्त कार्यभार सौंपकर मेरे पास भेजा है, यद्यपि तू चतुर हैं, तथापि इस प्रकार दूसरे का मर्मछेदन करना चतुराई नहीं हैं। अपनी जबदस्ती दिखलावा वास्तव में दुष्टों का ही काम है। दुष्ट पुरूष, दूसरे के दोष और अपने गुणों का स्वयं वर्णन किया करते हैं तथा अपने दोष और दूसरे के गुणों को छिपाते रहते हैं।

खलता अर्थात् दृष्टता खलता अर्थात् आकाश की बेल के समान है, क्योंकि जिस प्रकार आकाश की बैल से किसी का संताप दूर नहीं होता उसी प्रकार दृष्टता से किसी का संताप दूर नहीं होता, जिस प्रकार आकाश की बैल सुमन अर्थात् फूलों से शून्य होती है, उसी प्रकार दृष्टता भी सुमन अर्थात् विद्वान पुरूषों से शून्य होती है और जिस प्रकार आकाश की बेल फलरहित होती है, उसी प्रकार दृष्टता भी फलरहित होती है अर्थात् उससे किसी को कुछ लाभ नहीं होता, ऐसी इस दृष्टता का केवल मूर्ख लोग ही आश्रय लेते है।

जो सज्जन पुरूषों को इष्ट नहीं है, जो सब और से विरत अर्थात् नीरस अथवा विद्वेष रूपी फलों से व्याप्त है, तथा लोगों को संताप देने वाली है, ऐसी इस खलता-दुष्टता को मैं दुख: अर्थात् दु:ख की बेल ही समझता हूँ यदि न्यायपूर्ण विरोध करने वाले पुरूष के विषय में पहले कुछ देने के विधान के साथ साम काक प्रयोग किया जावे और बाद में भेद तथा दण्ड उपाय काम में लाये जावें तो उनके द्वारा पहले प्रयोग में लाया हुआ साम उपाय बाधित हो जाता है। साम, दाम, दण्ड, भेद इन चारों उपायों का यथायोग्य स्थान में नियोग करना कार्यसिद्धि का कारण है और विपरीत नियोग करना पराभव का कारण है।

प्रतापशाली पुरूष के साथ साम् अर्थात् शांति का प्रयोग करना एकान्त रूप से शांति करने वाला नहीं माना जा सकता, क्योंकि प्रतापशाली मनुष्य स्निग्ध अर्थात् स्नेही होने पर भी यदि क्रोध से उत्पन्न हो जावे तो उसके साथ शांति का प्रयोग करना चिकने किन्तु गरम घी में पानी सींचने के समान है। इसी प्रकार अतिशय प्रतापशाली पुरूष को कुछ देने का विधान करना भी मैं नि:सार समझता हूँ, क्योंकि हजारों समिधाएँ (लकड़ियाँ) देने पर भी प्रज्वलित अग्नि कैसे शांत हो सकती हैं?

जिस प्रकार लोहा तपाने से गरम नहीं होता, उसी प्रकार तेजस्वी मनुष्य कष्ट देने से नरम नहीं होता इसलिए उसके साथ दण्ड देने का प्रयोग करना निरर्थक हैं, क्योंकि अनुनय-विनय कर पकड़ने योग्य हाथी पर ही दण्ड चल सकता है, सिंह की नहीं। इसीलिए इन, साम, दण्ड आदि उपायों का विपतिर प्रयोग करने वाले और उपाय न जानने वाले आप जैसे लोग चारों उपायों के प्रयोग का ज्ञान न होने से स्वयं दु:खी होते हैं।

हे दूत! हम लोग शांति से भी वश नहीं किये जा सकते यह निश्चय होने पर भी आप हमारे साथ अंहकार का प्रयोग कर रहे हैं, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि आप मूर्ख है। भरतेश्वर उमर में बड़े हैं, इतने ही से वे प्रशंसनीय नहीं कहे जा सकते, क्योंकि हाथी बूढ़ा होने पर भी क्या सिंह के बच्चे की बराबरी की सकता हैं? हे दूत! प्रेम और विनय ये दोनों परस्पर मिले हुए कुटुम्बी लोगों में ही सम्भव हो सकते हैं, यदि उन्हीं कुटुम्बियों में विरोध हो जाये तो इन दोनों की गति नष्ट हो जाती है।

बड़ा भाई नमस्कार करने योग्य हैं, यह बात अन्य समय में अच्छी तरह हमेशा हो सकती है, परन्तु जिसने मस्तक पर तलवार रख छोड़ी है, उसका प्रणाम करना यह कौन-सी रीति हैं? हे दूत! दूसरे के अंहकार के अनुसा प्रवृत्ति करने से हमारा चित्त दु:खी होता है, क्योंकि संसार में एक सूर्य की तेजस्वी है। क्या उससे अधिक और भी कोई तेजस्वी हैं?

आदिब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ने राजराजा यह शब्द मेरे लिए और भरत के लिए दोनों के लिए दिया है, परन्तु आज भरत राजराजा हो गया है सो यह कपोल के ऊपर उठे हुए गुमड़े के समान व्यर्थ है। अथवा रत्नों के द्वारा अत्यन्त

लोभ को प्राप्त हुआ वह भरत अपने इच्छानुसार भले ही राजराजा रहा आवे, हम अपने धर्मराज्य में स्थिर रहकर राजा ही बने रहेंगे। वह भरत बालकों के समान छल से हम लोगों को बुलाकर और प्रणाम कराकर कुछ पृथिवी देना चाहता है तो उसका दिया हुआ पृथिवी का टुकड़ा खली के टुकड़े के समान तुच्छ मालूम होता है। तेजस्वी मनुष्यों के लिए जो कुछ थोड़ा बहुत अपनी भुजारूपी वृक्ष का फल प्राप्त होता है, वहीं प्रशंसनीय है। उनके लिए दूसरे की भौंह रूपी लता का फल अर्थात् भौंह से प्राप्त हुआ चार समुन्द्रपर्यन्त पृथिवी का ऐश्वर्य भी प्रशंसनीय नहीं है।

जिस प्रकार पनया सांप (सर्प) इस शब्द को निरर्थकर करता है, उसी प्रकार जो मनुष्य राजा होकर भी दूसरे की आज्ञा से उपहत हुई लक्ष्मी धारण करता है वह ''राजा'' इस शब्द को निर्थक करता है। जो पुरूष राजा होकर भी दूसरे के अपमान से मलिन हुई विभूति को धारण करता है, निश्चय वे उस मनुष्यरूपी पशु के लिए यह राज्य की समस्त सामग्री भार के समान है।

जिसके दाँत टूट गये हैं, ऐसे हाथी के समान जो पुरुष मानभंग होने पर प्राप्त हुए भोगोपभोगों से प्राण धारण करना चाहता है, उस पुरूष में और पशु में भेद कैसे हो सकता है? हो मानभंग के भार से झुके हुए शिर को धारण करता है, उसकी छाया का नाश छत्रभंग होने के बिना ही हो जाता है।

जिन्होंने भागोपभोग की सब सामग्री छोड़ दी है, ऐसे मुनि भी जब अभिमान (आत्मगौरव) से सहित होते हैं, तब फिर राज्य भोगने की इच्छा करने वाला ऐसा कौन पुरूष होगा, जो अभिमान को छोड़ देगा? वन में निवास करना अच्छा है, और प्राणों को छोड़ देना भी अच्छा है, किन्तु अपने कुल का अभिमान रखपने वाले पुरूष को दूसरे की आज्ञा के अधीन रहना अच्छा नहीं है। धीर-वीर पुरूषों को चाहिए कि वे इन नश्वर प्राणों के द्वारा अभिमान की ही रक्षा करें, क्योंक अभिमान के साथ कमाया हुआ यश इस संसार को सदा सुशोभित करता रहता है।

तूने जो बहुत कुछ बढ़ाकर चक्रवर्ती के पराक्रम का वर्णन किया है सो ठीक है, कयोंकि तेरा यह सब करना स्तुति निन्दा में तत्पर हैं अर्थात् स्तुतिरूप होकर भी निन्दा को सूचित करने वाला है। पण्डित लोग निःसार वस्तु को भी अपने वचनों से पुष्ट ही करते हैं, सो ठीक ही हैं, क्योंकि स्तुति प्रारम्भ करने पर कुत्ते को भी सिंह कहना पड़ता है। हे दूत! तेरे द्वारा कहा हुआ यह समस्त कार्य हम लोगों को केवल वचनाडम्बर ही जान पड़ता है, क्योंकि कहाँ तो इसका दिग्विजय का प्रारम्भ करना और कहाँ धन इकट्ठा करने में तत्पर होना?

जिस प्रकार भिक्षुक चक्र धारण कर भिक्षा माँगता हुआ अतिशय दीनता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार चक्रवर्ती की वृत्ति धारण कर भिक्षा के समान कर वसूल करता हुआ तेरा स्वामी भरत तेरे द्वारा दीनता की परम सीमा को प्राप्त कर दिया जाता है। यह ठीक है कि चक्रवर्ती ने दिग्विजय के समय देवों को भी जीत लिया है, परन्तु यह बात केवल विश्वास करने योग्य है, अन्यथा तू यहाँ इतना तो विचार कर कि जलस्तम्भन करने में प्रवृत्त हुए तेरे स्वामी भरत ने जब बाण होता था, तब वह क्या दर्भ की शय्या पर नहीं सोया था अथवा उपहास नहीं किया था।

जिस प्रकार कुम्हार आयति अर्थात् लम्बाई से शोभायमान डण्डे के द्वारा चक्र को घुमाता हुआ पार्थिव अर्थात् मिट्टी के घट बनाता है, उसी प्रकार भरत भी आयति अर्थात् सुन्दर भविष्य से शोभायमान डण्डे (दण्डरत्न) से चक्र (चक्ररत्न) को घुमाता हुआ पार्थिव अर्थात् पृथिवी के स्वामी राजाओं को वश करता फिरता है, इसलिए कहना पड़ता है कि तुम्हारा यह राजा कुम्हार के समान आचरण करता है।

वह भरत पाप की धूलि को उड़ाता हुआ स्वयं कलंकित हुआ है और कुलीन मनुष्यों के कुल को भी सदा

के लिए कलंकित कर रहा है। हे दूत! प्रयोग में लाये हुए मंत्र–तंत्रों के द्वारा दूर से ही अनेक राजाओं को बुलाने वाले इस भरत का पराक्रम तू लज्जा के बिना कितना वर्णन कर रहा है? हे दूत! जिस समय तू इसके युद्ध की प्रशंसा करता है उस समय हम लोगों को बहुत दुख: होता है, क्योंकि उस समय स्वच्छों की तरह सेना के द्वारा भरत की सेना पानी के हिंडोले झूल रही थी अर्थात् हिंडोले के समान काँप रही थी।

क्षत्रिय पुत्र को तो जिसे कोई हरण न कर सकें, ऐसे यश–रूपी धन की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि इस पृथिवी में निधियों को गाड़कर रखने वाले अनेक लोग मर चुके हैं। अथवा जो रत्न एक हाथ पृथिवी तक भी साथ नहीं जाते और जिनके राजा लोग केवल मृत्यु को ही प्राप्त होते हैं, ऐसे रत्नों से क्या निकल सकता है? जो समस्त राजाओं के द्वारा रत्नों की राशि से तोला गया है, ऐसा वह भरत एक प्रकार का तुला पुरूष है। खेद है कि ऐसा ऐश्वर्य नहीं होता।

अवश्य ही वह भरत अपने पूज्य पिता श्री भगवान् ऋषभदेव के द्वारा दी हुई हमारी पृथिवी को छीनना चाहता है। सो इस लोभ का प्रत्याख्यान अर्थात् तिरस्कार करने के सिवाय और कुछ उपाय नहीं है। हे दूत! पिताजी के द्वारा दी हुई यह हमारे ही कुल की पृथिवी भरत के लिए भाई की स्त्री के समान है, अब वह उसे ही लेना चाहता है सो तेरे ऐसे स्वामी को क्या लज्जा नहीं आती?

जो मनुष्य स्वतंत्र है और इच्छानुसार शत्रुओं को जीतने की इच्छा रखते हैं, वे अपने कुल की स्त्रियों और भुजाओं से कमायी हुई पृथिवी को छोड़कर बाकी सब कुछ दे सकते हैं। इसलिए बार–बार कहना व्यर्थ है, एक छात्र से चिन्हित इस पृथिवी को वह भरत की चिरकाल तक उपभोग करें अथवा भुजाओं में पराक्रम रखने वाला मैं ही उपभोग करूँ।

जो प्रयोजन की सिद्धि से रहित हैं, ऐसे शूरवीरता के इन व्यर्थ वचनों से क्या लाभ हैं? अब तो युद्ध रूपी कसौटी पर ही मेरा और भरत का पराक्रम प्रकट होना चाहिए। इसलिए हे दूत! तू यह हमारा संदेश रहित एक वचन ले जा अर्थात् जाकर भरत से कह दे कि अब तो हम दोनों का जो कुछ होना होगा वह युद्ध की भीड़ में ही होगा। इस प्रकार अभिमान प्रकट करने वाले कुमार बाहुबली ने उस दूत को यह कहकर शीघ्र ही विदा कर दिया कि जा औ अपने स्वामी को युद्ध के लिए शीघ्र तैयार कर।

# बाहुबली के योद्धाओं का विचार

उस समय जिनके मुकुटों के संघर्षण से करोड़ो मणि उछल–उछलकर इधर–उधर पड़ रहे हैं, और उन मणियां से जो ऐसे जान पड़ते हैं, कि मानो अग्नि के सैकड़ों फलिंगों को ही इधर–उधर फैला रहे हों, ऐसे राजा लोग उठ खड़े हुए है। उसी क्षण अनेक योद्धाओं से भरी हुई महाराज बाहुबली की सेना में युद्ध की भीड़ को सूचित करने वाले योद्धाओं का परस्पर का आलाप सुनाई देने लगा था।

इस समय स्वामी के यह युद्ध की तैयारी बहुत दिन में हुई है, क्या अब हम लोग स्वामी के सत्कार से उऋण हो सकेंगे? राजा लोग किसी खास अवसर के लिए ही सेवक लोगों का पालन पोषण करते हैं, यदि वह अवसर नहीं साधा गया अर्थात् अवसर पड़ने पर स्वामी का कार्य सिद्ध नहीं किया गया तो फिर तृण से बने हुए इन पुरूषां से क्या लाभ है? अब यह शरीर छोड़ना चाहिए, यशरूपी धन कमाना चाहिए और विजय लाभ कर जयलक्ष्मी प्राप्त करनी

चाहिए, यह युद्ध का उत्सव कुछ थोड़ा फल देने वाला नहीं है। हम लोग, घावों से जर्जर हुए शरीर के प्रत्येक अंगों से, जिसमें धूप को मंद करने वाली बाणों की छाया पड़ रही हैं, ऐसे युद्ध के मण्डल में कब विश्राम करेंगे?

कोई कहता था कि मैं कब अपने बाणों से शत्रुओं की सेना के द्वारा किये हुए अनेक व्यूहों को छेदकर बिना किसी उपद्रव के बाणों की शय्या पर शयन करूँगा। कोई कहता था कि मैं कब युद्ध में क्षण-भर के लिए मूर्च्छित होकर हाथ के कानरूपी ताड़पत्र की आयु के चलने से जिसके युद्ध का अब परिश्रम दूर हो गया है, ऐसा होता हुआ हाथी के कन्धे पर बैठूँगा?

हाथी के दाँतरूपी अर्गलों में पिरोये जाने से जिसकी आँतडियाँ निकल रही है तथा जिसके मुख से टूटे-फूटे शब्द निकल रहे हैं, ऐसा होता हुआ मैं कब जयलक्ष्मी के कटाक्षों का निशाना बन सकूँगा? कोई कहता था कि हाथियों के दाँतों के बीच में लटकती हुई अपने आँतडियों के समूहरूपी मजबूत रस्सी पर झूला के समान विजयलक्ष्मी को बैठाकर मैं कब उसे तोलूँगा? इस प्रकार कहते हुए युद्ध के प्रेमी बड़े-बड़े योद्धाओं ने प्रत्येक सेना में अपने-अपने शस्त्र तथा शिर की रक्षा करने वाली टोपियाँ सँभाल ली।

तदनन्तर दिन समाप्त हो गया। सो ऐसा मालूम होता था, मानों योद्धाओं की भाँहों के तिरस्कार से भयभीत होकर कहीं भाग ही गया हो।

# संन्ध्या और रात्रि का वर्णन

अथानन्तर सूर्य का मण्डल लाल हो गया, मानों उसमें क्रोधित हुए योद्धाओं की सेना के नेत्रों की छाया के द्वारा दी हुई लाल कांति ही धारण की हो। उस समय क्षण-भर के लिए सूर्य की किरणों का समूह अस्तांचल के शिखर पर लगे हुए वन के वृक्षों की कोपलों के समान कुछ-कुछ लाल रंग का दिखाई दे रहा था। उस समय वह सूर्य अस्तांचल के शिखर पर लगे हुए किरणों से क्षण-भर के लिए ऐसा जान पड़ता था, मानों नीचे गिरने के भय से अपने किरणरूपी हाथों से किसी के हाथ का सहारा ही ले रहा हो।

जो सूर्य वारूणी अर्थात् पश्चिमी दिशा के समागम से पतित हो रहा हे और जिसका कांतिरूपी धन नष्ट हो गया है, ऐसे सूर्य को मानों पाप से डरते हुए ही अस्तांचल ने आलम्बन नहीं दिया था। वारूणी अर्थात् मदिरा के समागम से मनुष्य अपत्रि हो जाता है, उसका स्पर्श करना भी पाप समझा जाने लगता है, सूर्य भी वारूणी अर्थात् पश्चिम दिशा के समागम से मानों अपवित्र हो गया था।, उसका स्पर्श करना भी पाप समझा जाने लगता है, सूर्य भी वारूणी अर्थात् पश्चिमी दिशा के समागम से मानों अपवित्र हो गया था। उसका स्पर्श करने से कहीं में भी पापी न हो जाऊँ, इस भय से अस्ताचल ने उसे सहारा नहीं दिया-गिरते हुए को हस्तालम्बन देकर गिरने से नहीं बचाया। सूर्य डूब गया। उस समय सूर्य दिखाई नहीं देता था सो ऐसा जान पड़ता था, मानों बीते हुए दिन को खोजने के लिए गया हो, अथवा पाताल-लोक में घुस गया हो अथवा अस्ताचल के शिखरों के अग्रभाग से छिप गया हो, अथवा पाताल लोक में घुस गया हो अथवा अस्ताचल के शिखरों के अग्रभाग में छिप गया हो। जिस प्रकार कोई वीर पुरूष दारिद्ररूपी अंधकार को नष्ट कर और अपने कर अर्थात् टैक्स द्वारा भूभृत् अर्थात् पर्वतों पर आक्रमण कर दिन अर्थात् भाग्य के अंत में अशुक अर्थात् किरणों से भूभृत अथवा पर्वतों के आक्रमण कर दिन के अंत में किरणों के बिना यों ही चला गया-अस्त हो गया, यह कितने दुख: की बात है। यह सूर्य तो मेरु पव्रत के चारों और गोलाकार तिरछी गति से निरन्तर

घूमता रहता है, तथापि दूर होने से दिखाई नहीं देता। इसलिए मुख पुरूषों को नीचे गिरता हुआ-सा जान पड़ता है। सूर्य की इस विपत्ति के समय मों शोक से पीड़ित दिशा रूपी स्त्रियाँ अंधकार से भर जाने के कारण कांतिरहित मुख धारण कर रही थी। अंधकार छा जाने से दिशाओं की शोभा जाती रही थी।

कमलिनियों के कमलरूपी मुख मुरझा गये थे, जिससे वे ऐसी जान पड़ती थी, मानों सूर्य का वियोग होने से भ्रमरों के करूणाजनक शब्दों के बहाने रूदन करती हुई शोक ही कर रही हो। सांयकाल के लाल प्रकाश से व्याप्त हुए अस्ताचल के वन ऐसे जान पड़ते थे, मानों अत्यन्त भयंकर दावानल के शिखा से घिर गये हों।

सूर्य के बिना सब दिशाओं में गाढ़ अंधकार फैल गया था सो ठीक ही है, क्योंकि तेजस्वी के बिना प्राय: सब और अंधकार ही भर जाता है। अंधकार से घिरी हुई और ताराओं से व्याप्त हुई वह रात्रि ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानों वस्त्र पहनें हुई और चमकीलें मोतियों के आभूषण धारण किये हुई कोई अभिसारिणी स्त्री ही हों। जिस प्रकार मिथ्यादर्शन से दूषित पुरूषों को कुछ भी दिखाई नहीं देता-पदार्थ के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार गाढ़ अंधकार से भरे हुए लोक में पुरूषों की आँख खोलने पर भी सामने की कुछ भी वस्तु दिखाई नहीं देती थी।

जबरदस्ती अंधकार से घिरे हुए लोग भीतर ही भीतर व्याकुल हो रहे थे और उनकी दृष्टि भी कुछ काम नहीं देती थी। इसलिए उन्होंने सोना ही अच्छा समझा था। घर-घर लगाये हुए प्रकाशमन दीपक ऐसे अच्छे सुशोभित हो रहे थे, मानों अत्यन्त गढ़ अंधकार को भेदन करने के लिए बहुत सी सुइयाँ ही तैयार की गयी हों। इतने ही में जगत् को आनन्दित करने वाली किरणों से अंधकार को दूर से ही नष्ट कर चन्द्रमा इस प्रकार से उदय हुआ मानों कि लोक को दूध में ही नहला ही रहा हो, वह चन्द्रमा किसी उत्तम राजा के समान संसार को आनन्दित करता हुआ उदय हुआ था, क्योंकि जिस प्रकार उत्तम राजा अनुराग अर्थात् लालिमा से अपने अखण्ड मण्डल अर्थात् प्रतिबिम्ब को धारण कर रहा था और उत्तम राजा जिस प्रकार चारों और अपना कर अर्थात् टैक्स फैलाता है, उसी प्रकार वह चन्द्रमा भी चारों और अपने कर अर्थात् किरणें फैला रहा था। हिरण चिन्ह वाले चन्द्रमा को देखकर अंधकार का समूह बड़ा होने पर भी इस प्रकार भाग गया था, जिस प्रकार कि हिरण को पकड़े हुए सिंह को देखकर हाथियों का बड़ा भारी झुण्ड भाग जाता है। जिसमें ताराओं की पंक्ति फैली हुई है, ऐसे चन्द्रमा की चाँदनी का समूह उस समय ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों बुदबुदों सहित ऊपर से पड़ता हुआ आकाश रूपी समुन्द्र का प्रवाह ही हो।

हंस के बच्चे के समान ही वह चन्द्रमा अंधकाररूपी कौशल शैवाल को खोजता हुआ तारे रूपी हंसियों से भरे हुए आकाश रूपी सरोवर में अवगाह्न कर रहा था इधर-उधर घूम रहा था। समस्त अंधकार को नष्ट कर जगत् को किरणों से भरते हुए चन्द्रमा ने उस समय यह समस्त संसार अमृतमय बना दिया। अंधकार को दूर करके भी वह चन्द्रमा कलंकी बन रहा था। सो ठीक ही है, क्योंकि स्वाभाविक अंधकार बड़े पुरूषों से छूटना भी कठिन है। जिस प्रकार वैद्य के द्वारा तिमिर रोग को नष्ट करने वाले हाथों से स्पर्श की गई आँखें धीरे-धीरे अपना प्रकाश फैलाने लगती है, उसी प्रकार चन्द्रमा के द्वारा अंधकार को नष्ट करने वाली किरणों से स्पर्श की हुई दिशाएँ धीरे-धीरे अपना प्रकाश फैलाने लगती है, उसी प्रकार चन्द्रमा के द्वारा अंधकार को नष्ट करने वाली किरणों से स्पर्श की हुई दिशाएँ धीरे-धीरे अपना प्रकाश फैलाने लगी थी। वह रात पोदनपुर के क्षत्रिय स्त्री-पुरूष के लिए अंतिम रात थी। पता नहीं, कला का चन्द्रमा पुन: देखने मिले न मिले।

# सवेरा होना तथा मंगलपाठ का पढ़ा जाना

दिन का प्रारम्भ हुआ, रात्रि का अंधकार विलीन हो गया और सूर्य ने अपनी किरणों के समूह से पर्व दिशा का आंलिगन किया। रात्रि का अंधकार तो सूर्य की लाल किरणों से ही नष्ट हो गया था। अब तो सूर्य को केवल दिन रूपी लक्ष्मी का आंलिगन करना बाकी ही रह गया था। सूर्य चकवियों के अनुराग के साथ-ही-साथ कमलों की शोभा बढ़ा रहा था और उदय होते ही चाँद की शोभा भी चुराता जाता था-नष्ट करता जाता था।

सूर्य ने अपने किरण रूपी हाथों से अंधकार रूपी किवाड़ खोलकर दिशाओं के मुँह प्रकाशित कर दिये थे और समस्त जगत् के नेत्र खोल दिये थे। वह सूर्य विजय की इच्छा करने वाला राजा बड़े सवेरे उठाकर अपने प्रताप से पद्माकर अर्थात् कमलों के समूह को स्वीकार कर रहा था। अपने तेज से उन्हें विकसित कर रहा था।

यद्यपि उस समय महाराज बाहुबली स्वयं जाग गये थे, तथापि उन्हें जगाने का उद्योग करते हुए सुन्दर कण्ठ वाले बंदीजन जोर-जोर से मंगल पाठ पढ़ रहे थे।

**अशिशिरकरो लोकानन्दी जनैरभिनन्दितो**
**बहुमतकरं जेस्तन्वन्नितोऽयमु देष्यति।।**

**तेरपनवां पर्व/आदिपुराण**

**नृवर जगतामुद्योताय त्वमप्युदयोचितं**
**विधिमनुसरन् शय्योत्संग जहीहिमुदेश्रिय।।227।।**

**तेरपनवां पर्व/आदिपुराण**

हे पुरूषोतम, जो लोगों को आनन्द देने वाला है और लोग जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं ऐसा सूर्य सब लोगों को अच्छा लगने वाले तेज को फैलाता हुआ इधर पूर्व दिशा से उदय हो रहा है इसलिए आप भी जगत् को प्रकाशित और लक्ष्मी को आनन्दित करने के लिए सूर्योदय के समय होने वाली योग्य क्रियाओं को करते हुए शय्या का मध्यभाग छोड़िए।

**कतरकतमे नाक्रान्तास्ते बलैर्बलशालिनो**
**भुजबलमिदं लोकःप्रायो न वेत्तितवाल्यकः।।**
**भरतपतिना सार्द्धं युद्धे जयाय कृतोद्यमयो**
**नृपवर भवान् भूयाद् भर्ता नृवीरजयश्रियः।।228।।**

**तेरपनवां पर्व/आदिपुराण**

हे राजाओं मे श्रेष्ठ! आपकी सेनाओं ने कितने-कितने बलशाली राजाओं पर आक्रमण नहीं किया है, ये छोटे-छोटे लोग प्रायः आपकी भुजाओं के बल को जानते ही नहीं हैं। हे नरवीर! आपने भरतेश्वर के साथ युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए उद्यात किया है। इसलिए विजयलक्ष्मी के स्वामी आप ही हों।

**रविरविरलानश्रन् जातानिवाश्रम शाखिनां,**
**तुहिनकणिकपातानाशु प्रमृज्य करोत्करैः।**

**अयमुदयति प्राप्तानन्दैरितोऽम्बुजिवीवनैः**
**उदयसमये प्रत्युद्यातो धृतार्घ्यमिवाऽम्बुजेः:।।229।।**

हे देव! बगीचे के वृक्षों पर खड़ी हुई ओंस की बूंदों को निरन्तर पड़ते हुए आँसुओं के समान अपनी किरणों के समूह से शीघ्र ही पोंछता हुआ यह सूर्य उदय हो रहा है और उदय होते समय ऐसा जान पड़ता हैं मानों कमलिनियों के वन जिन्हें आनन्द प्राप्त हो रहा है, ऐसे कमलों के द्वारा अर्द्ध लेकर उसकी अगवानी ही कर रहे हों।

इधर देखिए, जो दूसरे किनारे पर सो रही है और निरंतर बहुत हुए आँसूओं के बहाने से जो मानों शोक ही छोड़ रही हैं, ऐसी अपनी स्त्री चकवी के पीछे-पीछे जाता हुआ चकवा कमलों के पराग से भरे हुए अपने दोनों पंखों को झटकाकर कमलिनियों के पत्तों से ढ़के हुए कमलसरोवर के तट पर धीरे-धीरे प्रवेश कर रहा है। यह चन्द्रमा पके हुए मृणाल की कांति को चुराने वाली अपनी कांति को सब दिशाओं के अंत से खींच रहा है। तथा अमृत बरसाने वाली अपनी किरणों को प्रत्येक कुमुदिनियों के समूह पर फैलाता हुआ वियोग से डर से ही मानों उनके साथ आलिंगन के संबंध को दृढ़ कर रहा है। जो अंधकाररूपी हाथियों के समूह के भेदन कर उनके रक्त से ही तर हुए के समान लाल-लाल दिखने वाले शरीर को धारण कर रहा है तथा नींद आ जाने से जिसकी नक्षत्ररूपी आँखों की पुतलियाँ तिरोहित अथवा कुटिल हो रही हैं, ऐसा यह चन्द्रमारूपी सिंह वन के समान आकाश को उल्लंघन कर अब अस्ताचल की गुहारूप एकान्त स्थान का निश्चित रूप से आश्रय ले रहा है।

**नृपवर जिनभर्तुर्मङ्गलैरेभिरिष्टैः**
**प्रकटितजयघोषैस्तवं विबुध्यस्व भूयः।**
**भवति निखिलविघ्नप्रप्रशान्तिर्यतस्ते**
**रणशिरसि जयश्रीकामिनी कामुकस्य।।237।।**

हे राजाओं में श्रेष्ट! जिनमें जय-जय की घोषणा प्रकट रूप से की गयी है, ऐसे जिनेन्द्र के इन इष्ट मंगलों से आप फिर से जग जाइए, क्योंकि इन्हीं मंगलों के द्वारा रण के अग्रभास में विजयलक्ष्मी रूपी स्त्री को चाहने वाले आपके समस्त विघ्नों की अच्छी तरह शांति होगी।

**जयति दिविजनाथैः प्राप्तपूजर्द्धिरर्हन्**
**धुतदुरितपरागो वीतरागोऽपरागः।**
**कृतनतिशतयज्व प्रज्वलन्मौलिरत्न**
**च्छुरितरूचिररोचिर्मञ्जरीपिञ्जराङ्घ्रिः।।238।।**

अनेक इन्द्रों के द्वारा जिन्हें पूजा की ऋद्धि प्राप्त हुई है, जिन्होंने पापरूपी धूल नष्ट कर डाली है, जो वीतराग हैं - जिन्होंने रागद्वेष नष्ट कर दिया हैं और नमस्कार करते हुए इन्द्रों के दैदीप्यमान मुकुट के रत्नों से मिली हुई सुंदर किरणों की मंजरी से जिनके चरण कुछ-कुछ पीले हो रहे हैं, ऐसे श्री अर्हन्त देव सदा जयवन्त रहें।

**जयति जयविलासः सूच्यतेयस्य पौष्पै**
**रतिकुलतरूगमैंनिर्जितानङ्ग मुक्तैः।**
**अनुपद युगमस्भै र्भङ्ग शोकादिवावि**
**ष्कृतकरूणनिनादैः सोऽयामादृद्यो जिनेन्द्र।।239।।**

जिनके भीतर भ्रमरों के समूह गुंजार कर रहे हैं और उनसे जो ऐसे मालूम होते हैं, मानों अपनी पराजय के शोक से रोते हुए कामदेव के करूण क्रन्दन को ही प्रकट कर रहे हों तथा हारे हुए कामदेव ने अपने पुष्परूपी शस्त्र भगवान के चरण-युगल के सामने डाल रखे हों, ऐसे पुष्पों के समूह से जिनके विजय की लीला सूचित होती है, वे प्रथम जिनेन्द्र श्री वृषभदेव जयकान्त हों।

**जयति जितमनोभूर्भूरिधामा वयम्भू**
**र्जिनपतिपरागः क्षालितागः परागः।**
**सुरमुकुटविटङ्गोटूढ पादाम्बुजश्रीः**
**जगदजगदगारप्रान्तविश्रान्तबोधः।।240।।**

जिन्होंने कामदेव को जीत लिया है, जिनका तेज अपार है, जो स्वयंभू है, जिनपति हैं, वीतराग हैं, जिन्होंनें पापरूपी धूलि धो डाली हैं, जिनके चरणकमलों की शोभा देव लोगों ने अपने मुकुट के अग्रभाग पर धारण कर रखी है और जिनका ज्ञान लोक-अलोकरूपी घर के अंत तक फैला हुआ है, ऐसे श्री प्रथम जिनेन्द्र सदा जयवन्त रहे। (इस प्रकार भगवान की स्तुति कर वें बंदीजन फिर कहने लगे कि) -

हे पुरूषोतम! महाराज भरत भी आपके दोनों भुजारूपी अर्गलदण्डों की तुलना नहीं प्राप्त कर सकते हैं, अथवा भुजाओं का बल तो दूर रहे, जब आप युद्ध के निकट जा पहुँचते हैं, तब आपके देखने मात्र से ही ऐसा कौन राजा है, जो आपके सामने खड़ा रहने के लिए समर्थ हो सकें, इसलिए हे अधीश्वर! समय व्यतीत करना व्यर्थ हैं, निद्रा छोडिए। इस महान कार्य में सदा जागरूक रहिए और शीघ्र ही विजयलक्ष्मी को पाकर अन्य सब जगह विजय प्राप्त करने के लिए सब पर शासन करने वाले देवाधिदेव जिनेन्द्र देव को भक्तिपूर्वक फिर से नमस्कार कीजिए।

इस प्रकार जिनमें अच्छे-अच्छे पदों की योजना की गयी हैं, ऐसे अनेक प्रकार के उत्कृष्ट तथा राजाओं के योग्य, विजय कराने वाले मंगल-गीतों के द्वारा बाहुबली महाराज विजय प्राप्त करने के लिए जागे और जिस प्रकार ऐरावत हाथी निन्द्रा छूट जाने से गंगा के किनारे की भूमि का साथ धीरे-धीरे छोड़ता है, उसी प्रकार उन्होंने भी निन्द्रा छूट जाने से गंगा के किनारे के भूमि का साथ धीरे-धीरे छोड़ता है, उसी प्रकार उन्होंने भी निद्रा छूट जाने से धीरे-धीरे शय्या का साथ छोड़ दिया। सेना के मुख्य-मुख्य लोगों के द्वारा जिसकी शोभा बढ़ रही है, जो स्वयं विशाल पराक्रम धारण किये हुए हैं और कितने ही राजा लोग दूर-दूर से आकर प्रणाम करते हुए जिसे देखना चाहते हैं, ऐसा वह तरूण बाहुबली मदोन्मत विजयी हाथियों की घटाओं से दिशाओं को रोकता हुआ सेना के साथ-साथ युद्ध के योग्य भूमि में जा पहुँचा।

# भरत की सेना का जाकर पोदनपुर पहुँचना

दूत के वचनरूपी तेज वायु के आघात से प्रेरित हुआ चक्रवर्ती का सेनारूपी समुन्द्र आकाश और पृथिवी को रोकता हुआ चलने लगा। उस समय युद्ध की सूचना करने वाले बड़े-बड़े नगाड़े गंभीर शब्दों से बज रहे थे और उनके शब्दो से तलवार उठाने में व्यग्र हुए विद्याधर भयभीत हो रहे थे। चक्रवर्ती की सेनाएँ अलग-अलग विभागों में विभक्त होकर चल रही थीं, सबसे आगे पैदल सैनिकों का समूह था, उससे कुछ दूर पर घोड़ों के समूह थे तथा आगे-पीछे और ऊपर विद्याधर तथा देव चल रहे थे।

इस प्रकार छह प्रकार की सेना सामग्री से सम्पन्न हुए महाराज भरतेश्वर ने अपने छोटे भाई को जीतने की इच्छा से अनेक राजाओं के साथ प्रस्थान किया। उस समय विजय-पताकाओं से सहित बडे-बड़े हाथियों के समूह ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों वृक्षों के साथ-साथ चलते हुए पर्वतों के समूह ही हों।

जिनसे झरते हुए मदजल की दृष्टि से समस्त भूमि सींची गयी है, और जिन्होंने सब दिशाएँ रोक ली हैं, ऐसे मदोन्मत हाथियों के साथ चक्रवर्ती भरत चल रहे थें, उस समय वे हाथी ऐसे मालूम हाते थे, मानों झरनों से सहित पर्वत ही हों। जिनके समस्त शरीर पर श्रृंगार किया गया हो और जो ऊँचे है वेसे वे विजय के हाथी ऐसे सुशोभित होते थे, मानों संन्ध्याकाल की सघन धूप से व्याप्त हुए चलते फिरत पर्वत ही हों। जो सब प्रकार के सजाये गये हैं और जिन पर विजय पताकाएँ फहरा रही हैं, ऐसे वे सेना के हाथी इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानों महाराज भरत को अपना बल दिखाने के लिए कुलाचल ही आये हों।

जिन्होंने दैदीप्यमान तथा वीररस के योग्य वेष धारण किया हैं, और जिन्होंने अंकुश हाथ में ले रखा हैं, ऐसे हाथियों के कन्धों पर बैठे हुए महावत लोग ऐसे जान पड़ते थे, मानों एक जगह इकट्ठा हुआ अभिमान ही हों। घुड़सवार लोग, जिनकी आगे की धार का अग्रभाग बहुत तेज हैं, ऐसी तलवारों से ऐसे जान पड़ते थे, मानों, उनके पराक्रम ही मूर्तिमान होकर उनकी भुजाओं के अग्रभाग अर्थात् हाथों में आ लगे हों। जिनके तरकश अनेक प्रकार के बाणों से भरे हुए हैं, ऐसे धनुर्धारी लोग इस प्रकार जान पड़ते थे, मानों बड़ी-बड़ी शाखा वाले वन के वृक्ष कोटरों में रहने वाले सर्पो से ही सुशोभित हो रहे हों।

अनेक राजा लोग महाराज भरत को घेरकर चल रहे थे और दूर से ही अपनी सेना की सामग्री यथायोग्य रूप से दिखलाते जाते थे। नवीन युद्ध का प्रारम्भ सुनकर जिनके चित्त व्याकुल हो रहे हैं, ऐसी स्त्रियों को वीर योद्धा बड़ी धीरता के साथ समझाकर आश्वासन दे रहे थे। उस समय घोड़ों के खुरों से उठी हुई और आकाश को उल्लंघन करने वाली पृथिवी की धूल क्षण-भर के लिए देवांगनाओं के देखने में भी बाधा कर रही थी।

समस्त दिशाओं को व्याप्त करने वाले आकाश की उल्लंघन करने वाले उस धूलि से उत्पन्न हुए अंधकार में चक्ररत्न का प्रकाश ही मनुष्यों के नेत्रों को अपना-अपना विषय ग्रहण करने के सम्मुख कर रहा था। राजा लोग रास्ते में ही अत्यन्त उत्कट वीररस से भरे हुए योद्धाओं के परस्पर के वार्तालाप से तथा इसी प्रकार के अन्य लोगों की बातचीत से ही उत्साहित हो रहे थे। उधर राजा बाहुबली रणभूमि को दूर से ही युद्ध के योग्य बनाकर ठहरे हुए हैं और इधर राजाओं में सिंह के समान तेजस्वी महाराज भरत भी यन्त्रणा सहित होकर उनके सम्मुख जा रहे हैं। नहीं मालूम

इस युद्ध में इन दोनों भाइयों का क्या होगा? प्रायः कर इनका यह युद्ध सेवकों की शांति के लिए नहीं हैं।

भरतेश्वर ने यह युद्ध बहुत ही अयोग्य प्रारम्भ किया है। सो ठीक ही है, क्योंकि जो ऐश्वर्य के मद से रोके नहीं जा सकते, ऐसे प्रभु लोग स्वेच्छाचारी ही होते हैं। जो ये मुकुटबद्ध राजा समस्त सामग्री के साथ युद्ध करने के लिए आये हुए हैं, वे क्या इन दोनों को नहीं रोक सकते हैं?

अहो, भुजाओं का पराक्रम रखने वाला यह कुमार बाहुबली भी महाप्रतापी हैं जो कि चक्रवर्ती के कुपित होने पर भी इस प्रकार युद्ध के लिए सम्मुख खड़ा हुआ है। अथवा शूरवीर लोगों को सामग्री की अधिकता विजय का कारण नहीं हैं, क्योंकि एक ही सिंह झुण्ड के झुण्ड हाथियों को जीत लेता हैं।

नमस्कार करते हुए हजारों देव जिसकी रक्षा करते हैं, ऐसा यह चक्र को धारण करने वाला भरत भी साधारण पुरूष नहीं हैं। इसलिए जो अनेक लोगों के विनाश का कारण हैं, ऐसा इन दोनों का युद्ध नहीं हो तो अच्छा है, यदि देव लोग यहाँ समीप में हो तो इस युद्ध की शांति करें।

इस प्रकार कितने ही लोग मध्यस्थ भाव से प्रशंसनीय वचन कह रहे थे और कितने ही पक्षपात से प्रेरित होकर अपने ही पक्ष की प्रशंसा कर रहे थे। प्रायः लोगों के इस प्रकार के वचनों से मन बहलाते हुए राजा लोग शीघ्र ही उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ वीर शिरोमणि कुमार बाहुबली पहले से विराजमान था।

बाहुबली की भुजाओं का दर्प देखकर प्रायः प्रायः कुछ डर गये। इस प्रकार चक्रवर्ती भरत की सेना के समीप पहुँचने पर वीरों के शब्दों से दिशाओं को भरने वाली बाहुबली की सेना समुन्द्र के जल के समान क्षोभ को प्राप्त हुई।

# मंत्रियों के द्वारा युद्ध का निर्णय

दोनों ही सेनाओं में जो शूरवीर लोग थे, वे परस्पर युद्ध करने की इच्छा से अपने हाथी, घोड़े आदि सजाकर सेना की रचना करने लगे-अनेक प्रकार की व्यूह आदि बनाने लगे। इतने में ही दोनों और के मुख्य-मुख्य मंत्री विचार कर इस प्रकार कहने लगे कि क्रूरग्रहों के समान इन दोनों का युद्ध शांति के लिए नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों ही चरम शरीरी हैं, इनकी कुछ भी क्षति नहीं होगी, केवल इनके युद्ध के बहाने से दोनों ही पक्ष के लोगों का क्षय होगा।

इस प्रकार निश्चय कर तथा भारी मनुष्यों के संहार से डसकर मंत्रियों ने दोनों की आज्ञा लेकर धर्मयुद्ध करने की घोषणा कर दी। उन्होंने कहा कि मनुष्यों का संहार करने वाले इस कारणहीन युद्ध से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि इसके कारण से बड़ा भारी अधर्म होगा और यश का भी बहुत विघात होगा। यह बल के उत्कर्ष की परीक्षा अन्य प्रकार से भी हो सकती है। इसलिए तुम दोनों का ही परस्पर तीन प्रकार का युद्ध हो। इस युद्ध में जो पराजय हो वह तुम दोनों को भौंह चढ़ाये बिना ही सरलता से सहन कर लेना चाहिए तथ जो विजय हो वह भी अंहकार के बिना तुम दोनों को सहन करना चाहिए, क्योंकि भाई-भाईयों का यही धर्म हैं।

# तीनों तरह का युद्ध और बाहुबली की विजय

इस प्रकार सब राजाओं ने तथा मंत्रियों ने बड़ी विनय के साथ प्रार्थना की, तब कहीं बड़ी कठिनता से उद्धत हुये दोनों के बीच जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध में जो विजय प्राप्त करेगा, वही विजयलक्ष्मी का स्वयं स्वीकार किया हुआ होगा, इस प्रकार सबको आनंद देने वाली गंभीर भेरियों के द्वारा जिसमें सबको हर्ष हो, इस रीति से घोषणा कर मंत्री लोगों ने सेना के मुख्य-मुख्य पुरूषों को एक जगह इकट्ठा कर किया।

जो भरत के पक्ष वाले राजा थे, उन्हें एक और बैठाया और जो बाहुबली के पक्ष के थे, उन्हें दूसरी और बैठाया। उन सब राजाओं के बीच में बैठे हुए भरत और बाहुबली ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों किसी कारण से निषध और नीलपर्वत ही पास-पास आ गये हों। उन दोनों में नीलमणि के समान सुंदर छवि को धारण करता हुआ और काले-काले केशों से सुशोभित बाहुबली ऐसा जान पड़ता था, मानों भ्रमरों से सहित ऊँचा जम्बूवृक्ष ही हो। इसी प्रकार मुकुट से जिसका शरीर ऊँचा हो रहा है और जो तपाये हुए सुवर्ण के समान कांति को धारण करने वाला है, ऐसा राज-राजेश्वर भरत भी इस प्रकार सुशोभित हो रहा था, मानो चूलिका सहित गिरिराज सुमेरू ही हो। अत्यन्त धीर पलकों के संचार से रहित शांत दृष्टियुद्ध में बहुत शीघ्र विजय प्राप्त कर ली। हर्ष से क्षोभ मचाते हुए बाहुबली के दुर्निवार सेनारूपी समुन्द्र को रोककर राजाओं ने बड़ी मर्यादा के साथ कुमार बाहुबली को विजय से युक्त किया अर्थात् दृष्टियुद्ध में उनकी विजय स्वीकार की।

तदनन्तर मदोन्मत दिग्गजों के समान अभिमान से उद्धत हुए वे दोनों भाई जलयुद्ध करने के लिए सरोवर के जल में प्रविष्ट हुए और अपनी लम्बी-लम्बी भुजाओं से एक दूसरे पर पानी उछालने लगे। चक्रवर्ती भरत के वक्षःस्थल पर बाहुबली के द्वारा छोड़ी हुई जल की उज्ज्वल छटाएँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं। मानों सुमेरू पर्वत के मध्यभाग में जल का प्रवाह ही पड़ रहा हो। भरतेश्वर के द्वारा छोड़ा हुआ जल का प्रवाह अत्यन्त ऊँचे बाहुबली के मुख को दुर छोड़कर दूर से ही नीचे जा पड़ा।

भावार्थ-भरतेश्वर ने भी बाहुबली के ऊपर पानी फेंका था, परन्तु बाहुबली के ऊँचे होने के कारण वह पानी उनके मुख तक नहीं पहुँच सका, दूर से ही नीचे जा पड़ा। भरत का शरीर पाँच सौ धनुष ऊँचा था और बाहुबली का पाँच सौ पच्चीस धनुष। इसलिए बाहुबली के द्वारा छोड़ा हुआ जल भरत के मुख तथा वक्षःस्थल पर पड़ता था, परन्तु भरत के द्वारा छोड़ा हुआ जल बीच में ही रह जाता था। बाहुबली के मुख तक नहीं पहुँच पाता था।

इस प्रकार जब भरतेश्वर ने इस जलयुद्ध में भी विजय प्राप्त नहीं की, तब बाहुबली की सेनाओं ने फिर से अपनी विजय की घोषणा कर दी। सिंह के समान पराक्रम को धारण करने वाले धीर-वीर तथा परस्पर स्पर्धा करने वाले वे दोनों नरशार्दूल-श्रेष्ठ बाहुयुद्ध की प्रतिज्ञा कर रंगभूमि में आ उतरे। अपनी-अपनी भुजाओं के अंहकार से सुशोभित उन दोनों भाईयों का, अनेक प्रकार से हाथ मिलाने, ताल ठोकनें, पैंतरा बदलने और भुजाओं के व्यायाम आदि से बड़ा भारी बाहुयुद्ध (मल्लयुद्ध) हुआ।

जिसके मुकुट की दीप्ति का समूह अतिशय दैदीप्यमान हो रहा है, ऐसे भरत को बाहुबली ने लीला मात्र में ही घुमा दिया और उस समय घूमते हुए चक्रवर्ती ने क्षण-भर के लए अलात चक्र की लीला धारण की थी। बाहुबली ने राजाओं में श्रेष्ठ, बड़े भाई भरतक्षेत्र को जीतने वाले भरत को जीतकर भी ये बड़े हैं' इसी गौरव से उन्हें पृथिवी पर

नहीं पटका। किन्तु भुजाओं से पकड़कर ऊँचा उठाकर कंधे पर धारण कर लिया। उस समय भरतेश्वर को कंधे पर धारण करते हुए बाहुबली ऐसे जान पड़ते थे, मानों नीलगिरी ने बड़े-बड़े शिखरों से दैदीप्यमान हिमवान्पर्वत को ही धारण कर रखा हो।

उस समय बाहुबली के पक्षवाले राजाओं ने बड़ा कोलाहल मचाया और भरत के पक्ष के लोगों ने लज्जा से अपना सिर झुका लिया। दोनों पक्ष के राजाओं के साक्षात् देखते हुए चक्रवर्ती भरत का अत्यन्त अपमान हुआ था। इसलिए वे भारी लज्जा और आश्चर्य को प्राप्त हुए।

जिसने भौंहे चढ़ा ली हैं, जिसकी रक्त के सामने लाल-लाल आँखे इधर-उधर फिर रही हैं और जो क्रोध से जल रहा हूँ, ऐसा वह चक्रवर्ती क्षण-भर के लिए भी दुर्निरीक्ष्य हो गया अर्थात् वह क्रोध से अंधे हुए निधियों के स्वामी भरत ने, बाहुबली को पराजय करने के लिए समस्त शत्रुओं के समुहों को उखाड़कर फेंकने वाले चक्ररत्न का स्मरण किया। स्मरण करते ही वह चक्ररत्न भरत के समीप आया, भरत ने बाहुबली पर चलाया परन्तु उनके अवध्य होने से वह उनकी प्रदक्षिणा देकर तेजरहित हो उन्हीं के पास जा ठहरा।

भावार्थ - देवोपनीत शस्त्र कुटुम्ब के लोगों पर सफल नहीं होते। बाहुबली भरतेश्वर के एक पितृक भाई थे, इसलिए भरत का चक्र बाहुबली पर सफल नहीं हो सका। उसका तेज फीका पड़ गया और वह प्रदक्षिणा देकर बाहुबली के समीप ही ठहर गया।

आपने खूब पराक्रम दिखाया, इस प्रकार उच्च स्वर से कहकर धीर-धीर बाहुबली ने पहले तो भरतराज को हाथों में तोला और फिर कंधे से उतारकर नीचे जमीन पर रख दिया अथवा उच्च स्थान पर विराजमान किया। अनेक अच्छे-अच्छे राजाओं ने समीप आकर बाहुबली के विश्व की प्रशंसा करते हुए उनका सत्कार किया और बाहुबली ने उस अपने आपको उत्कृष्ट अनुभव किया।

# वैराग्य और दीक्षा ग्रहण

बाहुबली चिन्तन करने लगे कि देखो, हमारे बड़े भाई ने इस नश्वर राज्य के लिए यह कैसा उज्ज्वल जनक कार्य किया है? वह साम्राज्य फलकात में बहुत दुखः देने वाला है, और क्षणभंगुर है। इसलिए इसे धिक्कार हो। वह व्यभिचारिणी स्त्री के समान है, क्योंकि जिस प्रकार व्याभिचारिणी स्त्री एक पति को छोड़कर अन्य पति के पास चली जाती है, उसी पकार यह साम्राज्य भी एक पति को छोड़कर अन्य पति के पास चला जाता है। यह राज्य प्राणियों को छोड़ देता हैं, परन्तु अविवेकी प्राणी इसे नहीं छोड़ते यह दुखः की बात है।

जहाँ विषयों में आसक्त हुए पुरूष, इन विषयजनित सुखों की निन्दा, अपकार, क्षंणभगुरता और नीरसपने को भी नहीं सोचते हैं। जिनके वश में पड़े हुए प्राणी अनेक दु:खों की परम्परा को प्राप्त होते हैं, ऐसे विषय के समान भंयकर विषयों को कौन बुद्धिमान पुरूष प्राप्त करना चाहेगा? विषय खा लेना कहीं अच्छा है, क्योंकि वह एक ही भव में प्राणी को मारता है अथवा नहीं भी मारता हैं, परन्तु विषय सेवन करना अच्छा नहीं है, क्योंकि ये विषय प्राणियों को अनन्त बार फिर-फिर से मारते हैं।

जो प्रारम्भ काल में तो मनोहर मालूम होते हैं, परन्तु फलकाल में कड़वे (दु:ख देने वाले) जान पड़ते हैं, ऐसे विषयों के लिए यह अज्ञ प्राणी क्या व्यर्थ ही अनेक दु:खों को प्राप्त नहीं कर होता हैं? जो प्रारम्भ काल में अत्यन्त

आनंद देने वाले है और अंत में प्राणों का अपहरण करते हैं, ऐसे किंपाक फल (विषफल) के समान विषय इन विषयों को कौन बुद्धिमान् पुरूष सेवन करेगा? ये विषयरूपी शत्रु प्राणियों को जैसा उद्वेग करते हैं। वैसे उद्वेग का प्रहार, पज्ज्वलित, अग्नि, वज्र, बिजली और बडे-बड़े सर्प भी कर सकते हैं।

भोगों की इच्छा करने वाले मूर्ख पुरूष धन पान की इच्छा से बडे-बड़े समुन्द्र, प्रचण्ड युद्ध, भंयकर, वन, नदी और पर्वतों में प्रवेश करते हैं। विषयों की चाह रखने वाले पुरूष जलचर जीवों की लम्बी-लम्बी भुजाओं के आघात से उत्पन्न हुआ वज्रपात-जैसे कठोर शब्दों से क्षुब्ध हुए समुन्द्र में भी जाकर संचार करते हैं। उदय से जिसकी चेतना नष्ट हो गयी हैं, ऐसो भारत उन्हें नित्य मानता हैं, यह कितने दुख: की बात हैं? इस प्रकार बड़े भाइ की नीचता का चिरकाल तक विचार करते हुए बाहुबली ने भरत को उद्‌देश्य कर कठोर अक्षरों वाली वाणी कहीं।

हे राजाओं में श्रेष्ठ! क्षणभर के लिए अपनी उज्ज्वला या झेंप छोड़, मैं कहता हूँ सो सुन-तूने मोहित होकर ही इस न करने योग्य बड़े भारी साहस का सहारा लिया है। जो कभी मिट नहीं सकता, ऐसे मेरे शरीर रूपी पर्वत पर तून चक्र चलाा है, सो तेरा यह चक्र व्रज से बने हुए पव्रत पर पड़ते हुए व्रज के समान के समान व्यर्थ हैं, ऐसा निश्चय से समझ। दूसरी बात यह हैं कि जो तूने भाई रूप बरतनों को तोड़कर राज्य प्राप्त करना चाहा हैं, सो उससे तूने बहुत ही अच्छा धर्म और यश का उपार्जन किया है।

तूने अपनी यह स्तुति भी स्थापित कर दी कि चक्रवर्ती भरत आदि ब्रह्मा भगवान वृषभदेव का ज्येष्ठ पुत्र था तथा वह अपने कुल का उद्धारक हुआ था। हे भरत! आज तूने जिसे जीता है और पाप से भरी हुई है, ऐसी इस राज्यलक्ष्मी का तू एक अपने ही द्वारा उपभोग करने योग्य तथा अविनााशी समझता है। जिसका तूने आदर किया है, ऐसी यह राजलक्ष्मी अब तुझे भी प्रिय रहे। हे आयुष्मन! अब यह मेरे योग्य नहीं हैं, क्योंकि बंधन सज्जन पुरूषों के आनन्द के लिए नहीं होता है। यद्यपि यह तेरी लक्ष्मी फलवाती है, तथापि अनेक प्रकार के कांटों से, विपत्तियों से दूषित हैं! भला ऐसा कौन बुद्धिमान होगा, जो कांटे वाली लता को हाथ से छुयेगा।

अब हमें कण्टकरहित तपरूपी लक्ष्मी को अपने अधीन करना चाहते हैं, इसलिए यह राज्यलक्ष्मी लोगों के लिए विषय के कांटों की श्रेणी के समान सर्वथा त्याज्य है। अतएव जो मैंने यह ऐसा अपराधा किया हैं, उसे क्षमा कर दीजिए। मैं विनय से च्युत हो गया था अर्थात् मैंने आपकी विनय नहीं की। सो इसे में चचलता समझता हूँ।

**क्षमा करो हे भरतेश्वर, राज सम्पदा हे नश्वर।**
**निष्कंटक है राज्य जहाँ, ले जाता वैराग्य वहाँ।।**

जिस प्रकार मेघ से निकली हुई गर्जना संतप्त मनुष्यों को आनन्दित कर देती हैं, उसी प्रकार महाराज बाहुबली के मुख से निकलते हुए वाणी के समूह ने चक्रवर्ती भरत के संतप्त मन को कुछ-कुछ आनन्दित कर दिया था। 'हाँ मैंने बहुत ही दुष्टता का कार्य किया है।' इस प्रकार जोर-जोर से अपनी निन्दा करता हुआ चक्रवर्ती अपने पापकर्म से बहुत ही संतृप्त हुआ। जिसमें अनेक प्रकार के अनुनय-विनय का प्रयोग किया गया है। इस रीति के अंतिम कुलवर महाराज भरत को बार-बार प्रसन्न करता हुआ बाहुबली अपने संकल्प से पीछे नहीं हटा सो ठीक ही हैं, क्योंकि तेजस्वी पुरूषों की स्थिरता भी आश्चर्यजनक होती है।

**महाबलिनि निक्षिप्तराज्यर्द्धिः स स्वनन्दने।**
**दीक्षामुपादधै जैनीं गुरोराराधनयन् पदम।।104।।**

अपने पुत्र महाबली को राज्य लक्ष्मी सौंप दी और स्वयं गुरूदेव के चरणों की आराधाना करते हुए जैनी दीक्षा धारण कर ली।

**दृढ़ संकल्पी वैरागी, बाहुबली तुम बड़भागी।**
**रत्नत्रय श्रृंगार किया, जिनदीक्षाव्रत धार लिया।।**

# बाहुबली का तपश्चरण

जिसने समस्त परिग्रह छोड़ दिया है तथा जो दीक्षारूपी लता से अलिंगित हो रहा है, ऐसा वह बाहुबली उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानों पत्तों के गिर जाने से कृश लतायुक्तत कोई वृक्ष ही हो। गुरू की आज्ञा में रहकर शास्त्रों का अध्ययन करने में कुशल तथा एक बिहारीपन धारण करने वाले जितेन्द्रिय बाहुबली ने एक वर्ष तक प्रतिमायोग धारण किया अर्थात् एक ही एक ही आसन से खड़े रहने का नियम लिया। जिन्होंने प्रशंसनीय व्रत धारण किये हैं, जो कभी भोजन नहीं करते, और जिनके समीप का प्रदेश वन की लताओं से व्याप्त हो रहा हैं। ऐसे वे बाहुबली वामी के छिद्रों से निकलते हुए सर्पो से बहुत ही भयानक हो रहे थे। जिनके फण प्रकट हो रहे हैं, ऐसे फुँकारते हुए सर्प के बच्चों की उछल-कूद से चारों और से घिरे हुए वे बाहुबली ऐसे सुशोभित हो रहे थें मानों उसके चरणों के समीप विष के अंकुर ही लग रहे हों।

कंधों पर्यन्त लटकती हुई केशरूपी लताओं को धारण करने वाले वे बाहुबली मुनिराज अनेक काले सर्पो के समूहों को धारण करने वाले हरिचन्दन वृक्ष का अनुकरण कर रहे थे। फूली हुई वासन्ती लता अपनी शाखारूपी भुजाओं के द्वारा उनकी गाढ़ आलिंगन कर रही थी और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे, मानों हार लिए हुए कोई सखी ही अपनी भुजाओं से उनका आलिंगन कर रही हो।

जिसके कोमल पत्ते विद्याधरियों ने अपने हाथ से तोड़ लिए हैं, ऐसी वह वासन्ती लता उनके चरणों पर पड़कर सूख गयी थी और ऐसी मालूम होती थी मानों कुछ नम्र होकर अनुनय करती हुई कोई स्त्री ही पैरों पर पड़ी हों। ऐसी अवस्था होने पर भी वे कठिन तपश्चरण करते थे, जिससे उनका शरीर कृश हो गया था और उससे जान पड़ते थे, मानों मुक्तिरूपी स्त्री की इच्छा करता हुआ कोई कामी ही हो। तपरूपी अग्नि के संताप से संतृप्त हुए बाहुबली का केवल शरीर ही खड़े-खड़े नहीं सूख गया था, किन्तु दुखः देने वाले कर्म भी सूख गये थे अर्थात् नष्ट हो गये थे।

तीव्र तपस्या करते हुए बाहुबली के कभी कोई उपद्रव नहीं हुआ था, सो ठीक हैं, क्योंकि बड़े पुरूषों का धैर्य अचिन्त्य होता है, जिससे कि वे कभी विकार को प्राप्त नहीं होते। वे सब बाधाओं को सहन कर लेते थे, अत्यंत शांत थे, परिग्रहरहित थे और अतिशय दैदीप्यमान थे। इसलिए उन्होंने अपने गुणों से पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि को जीत लिया था।

**विचलित न हो शिवपथ में, रहे सदा दृढ़ व्रत में।**
**पूर्ण परीषह सहन करें, रामरस भावों वहन करें।।**

वे मार्ग से च्युत न होने के लिए भूख, प्यास, शीत, गरमी तथा डांस, मच्छर आदि परीषहों के दुखः सहन करते थे। उत्कृष्ट नाग्न्य व्रत को धारण करते हुए बाहुबली इन्द्रियरूपी धर्मों के द्वारा नहीं भेदन किये जा सके थे। ब्रह्मचर्य की उत्कृष्ट रूप से रक्षा करना ही नाग्न्य व्रत है और यही उत्तम तप है।

**भूख प्यास सर्दी-गर्मी, दसमसक नग्नत्व दमी।**

**काया चमड़े की पुतली, राग-अरति नहि करे बली।।**

वे रति और अरति इन दोनों परीषहों को भी सहन करते थे अर्थात् राग के कारण उपस्थित होने पर किसी से राग नहीं करते थे और द्वेष के कारण उपस्थित होने पर किसी से द्वेष नहीं करते थे, सो ठीक ही हैं, क्योंकि विषयों की इच्छा न रखने वाले पुरूषों को रति तथा अरति की बाधा नहीं होती। भोगों से विरक्त हुए तथा स्त्रियों के अपवित्र शरीर को चमड़े की पुतली के समान देखते हुए उन बाहुबली महाराज को स्त्रियों के द्वारा की हुई कोई बाधा नहीं हुई थी अर्थात् वे अच्छी तरह स्त्री परीषह सहन करते थे। वे हमेशा खड़े रहते थे और जूता तथा शयन आदि की मन से भी इच्छा नहीं करते थे। इसलिए उन्होनें चर्या, निषद्यों और शय्या परीषह को लीला मात्र में ही जीत लिया था।

**चर्या और निषद्या का, जीत लिया दुख शय्या का।**

**आगम में जो शेष कहे, उनके जेता आप रहे।।**

जो स्वयं नष्ट हो जाने वाले शरीर में निःस्पृह रहते हैं और न उसमें कोई आनन्द ही मानते हैं– ऐसे परमार्थ के जानने वाले में श्रेष्ठ बाहुबली महाराज वध और आक्रोश परीषह को सहन करते थे। याचना से प्राप्त हुए भोजन के द्वारा शरीर को स्थित रखना उन्हें इष्ट नहीं था। इसलिए वे मौन रहकर याचना परीषह की बाधाओं को सहन करते थे। जिन्होंने उत्तम क्षमा धारण की हैं, शरीर का संस्कार छोड़ दिया हैं, और जिन्हें सुख तथा दुखः दोनों ही समान हैं, ऐसे उन मुनिराज ने स्वेद मल तथा तृण स्पर्श परीषह को भी सहन किया था।

यह शरीर रोगों का घर हैं' इस प्रकार चिंतवन करते ही वे धीर–वीर बुद्धि के धारक बाहुबली बड़ी कठिनता से सहन करने योग्य रोगों से उत्पन्न हुई बाधा भी सहन करते थे। ज्ञान का उत्कर्ष सर्वज्ञ होने तक हैं अर्थात् जब तक सर्वज्ञ न हो जाते, तब तक ज्ञान घटता रहता हैं। इसलिए ज्ञान से उत्पन्न हुए अंहकार का त्याग करते हुए अतिशय बुद्धिमान और साहसी वे मुनिराज प्रज्ञा परीषह को सहन करते थे।

वे अपने सत्कार, पुरस्कार में कभी उत्कंठित नहीं होते थे। यदि किसी ने उन्हें अपने कार्य में अगुआ बनाया तो वे हर्षित नहीं होते थे – और किसी ने उनका सत्कार किया तो संतुष्ट नहीं होते थे। सदा संतुष्ट रहने वाले बाहुबली जी ने अलाभ परीषह को जीता था तथा अज्ञान और अदर्शन से उत्पन्न होने वाली बाधाएँ भी उन मुनिराज को नहीं हुई थी। इस प्रकार परीषहों के जीतने से उनके बहुत बड़ी कर्मों की निर्जरा हो गयी थी। सो ठीक ही हैं, क्योंकि परीषहों को जीतना ही कर्मो की निर्जरा करने का श्रेष्ठ उपाय है।

**कर्म निर्जरा के साधक, विघ्न विनाशक आराधक।**

**सकल परिषह के जेता, महाश्रमण शिवपथ नेता।।**

उन्होंने क्षमा से क्रोध को, अंहकार के त्याग से मान को, सरलता से माया को संतोष से लोभ को जीता था। कामदेव को जीतने वाले उन मुनिराज ने पाँचों इन्द्रियों को अनायास ही जीत लिया था। सो ठीक ही हैं, क्योंकि विषय रूपी ईधन जलती हुई कामरूपी अग्नि को शमन करने वाला तपश्चरण ही है। उन्होंने काम को जीत लेने से आहार,

भय, मैथुन और परिग्रह इन संज्ञाओं को नष्ट किया था। इस प्रकार अंतरंग शत्रुओं के प्रसार को बार-बार नष्ट करते हुए उन आत्मज्ञानी तथा समस्त पदार्थों को जानने वाले मुनिराज ने अपने आत्मा के द्वारा ही अपने आत्मा को जीत लिया था।

पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ, पाँच इन्द्रियदमन, स्त्री परित्याग, केशों का लोंच करना, छह आवश्यकों में कभी बाधा नहीं होना, स्नान नहीं करना, पृथिवी पर सोना, दाँतौन नहीं करना, खड़े होकर भोजन करना और दिन में एक बार आहार लेना, इन्हें अट्ठाइस मूलगूण कहते हैं। इनके सिवाय चौरासी लाख उत्तर गुण भी हैं। वे महामुनि उन सबके पालन करने में प्रयत्न करते थे।

**पंच महाव्रत का पालन, पांचों समिति, इन्द्रिय दमन।**
**षट् आवश्यक कर्म करें, शेष सात गुण आप धरें।।**

**समता रस का स्वाद चखें, वंदन संस्तव भाव रखें।**
**प्रतिक्रमण स्वाध्याय करं, चिंतन कार्योत्सर्ग धरें।।**

**वस्त्र त्याग कचलुंच करन, नहीं नहाना भूमिशयन।**
**अंदत धोवन, दीति अशन, एक बार दिन में भोजन।।**

**मुनिचर्या के सारे गुण, लख चौरासी उत्तर गुण।**
**महामुनीश्वर पाल रहें नमन तुम्हें त्रिकाल रहे।।**

इनमें कुछ भी नहीं छोड़ते हुए अर्थात् सबका पूर्ण रीति से पालन करते हुए वे मुनिराज व्रतों की उत्कृष्ट विशुद्धि को प्राप्त हुए थे तथा जिस प्रकार दैदीप्यमान किरणों से सूर्य प्रकाशमान होता है, उसी प्रकार वे भी तप की दैदीप्यमान किरणों से प्रकाशमान हो रहे थे। वे रस गारव, शब्द गारव और ऋिद्धि गारव इन तीनों से सहित थे, अत्यंत निःशल्य थे और दशधर्मो के द्वारा उन्हें मोक्षमार्ग में अत्यंत दृढ़ता प्राप्त हो गयी थी। वे मुनिराज किसी विजीगीषु अर्थात् शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वाले राजा के समान जान पड़ते थे, क्योंकि जिस प्रकार विजिगीषु राजा किसी दुर्ग आदि सुरक्षित स्थान का आश्रय लेते हैं, तलवार में दैदीप्यमान होता है और कवच पहने रहता है उसी प्रकार उन मुनिराज ने भी तीन गुप्तियों रूपी दुर्गो का आश्रय ले रखा था, वे ज्ञानरूपी तलवार से दैदीप्यमान हो रहे थे और पाँच समितियों रूप कवच पहन रखे थे।

कषायरूपी चोरों के द्वारा उनका रत्नत्रय रूपी धन नहीं चुराया गया था, क्योंकि वे सदा जागते रहते थे और बार-बार प्रमादरहित होते रहते थे। वे सदा मौन रहते थे। इसलिए कभी उनका विकथाओं में आदर नहीं होता था। उनके मनरूपी विशाल घर में सदा ज्ञानरूपी दीपक प्रकाशमान रहता था, इसलिए ही समस्त पदार्थ उनके ध्येय कोटि में थे अर्थात् ध्यान करने योग्य थे।

**तीन गुप्तियाँ दुर्ग बनीं, आश्रय देकर सतत् खड़ी।**
**ज्ञानरूप तलवार लिए, कवच समिति का धार लिए।।**

**विषय कषायों के वह चोर, आ नहिं पाये मेरी ओर।**
**इसीलिए रत्नत्रय धन, चुरा न पाये, हे भगवन।।**

**कारण आतम शोध करें, हर क्षण आतम बोध धरें।**

**सदा जागते ही रहते, अप्रमत चर्या करते।।**

**मनरूपी निज मन्दिर में, रहे प्रकाशित अंदर में।**
**ज्ञानदीप जल रहें जहाँ, अंधकार भी नहीं वहाँ।।**

वे मति और श्रुत ज्ञान के द्वारा संसार के समस्त पदार्थो का चिन्तवन करते थे। इसलिए उन्हें यह जगत् हाथ पर रखे हुए आँवले के समान अत्यन्त स्पष्ट था। जो परीषहों को जीत लेने से दैदीप्यमान हो रहे हैं और जिन्होनें इन्द्रियरूपी शत्रुओं को जीत लिया हैं, ऐसे वे बाहुबली कषायरूपी शत्रुओं को छेदकर तपरूपी राज्य का अनुभव कर रहे थे। तपश्चरण का बल पाकर उन मुनिराज ने योग के निमित्त से होने वाली ऐसी अनेक ऋद्धियाँ प्रकट हुई थीं, जिनसे कि उनके तीनों लोकों में क्षोभ पैदा करने की शक्ति प्रकट हो गयी थी।

**तपश्चरण बल पाकर के, योग साधना ध्याकर के।**
**नैक ऋद्धियाँ सिद्ध हुई, जग में परम प्रसिद्ध हुई।।**

**अणिमा महिमा औ गरिमा, प्राप्ति प्राकाम्य औ लघिंमा।**
**ईश वशित्व जगाये हो, अष्ट्र ऋद्धि प्रकटाये हो।।**

**प्राप्त ऋद्धियाँ औषधियाँ, हरे व्याधियाँ विकृतियाँ।**
**पास आपके जो आते, वह निरोगता पा जाते।।**

**तपबल प्रभुता प्रकटातीं, स्वतः ऋद्धियाँ हो जाती।**
**हे ऋद्धीश्वर तपोबली, महा मुनीश्वर बाहुबली।।**

उस समय उनके मतिज्ञानावरण आदि कर्मो के क्षयोपशम से मतिज्ञान आदि चारों प्रकार के ज्ञानों में वृद्धि हो गयी थी। मतिज्ञान की वृद्धि होने से कोष्ठबुद्धि आदि ऋद्धियाँ प्रकट हो गयी थीं और श्रुत ज्ञान के बढ़ने से समस्त अंगों तथा पूर्वो के जानने आदि की शक्ति का विस्तार हो गया था। वे अवधिज्ञान में परमावधि को उल्लंघन कर सर्वावधि को प्राप्त हुए थे तथा मनः पर्यय ज्ञान में विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान को प्राप्त हुए थे।

उन मुनिराज के ज्ञान की शुद्धि होने से तप की शुद्धि भी बहुत अधिक हो गयी थी। सो ठीक ही हैं, क्योंकि जिस प्रकार किसी बड़े वृक्ष के ठहरने में मूल कारण उसकी जड़ हैं, उसी प्रकार तप के ठहरने आदि में मूल कारण ज्ञान है। वे महामुनि उग्र, और महाउग्र तप से अत्यन्त कृश हो गये थे तथा दीप्त नामक तप से सूर्य के समान अत्यन्त दैदीप्यमान हो रहे थे। उन्होंने तप्तघोर और महाघोर नाम के तपश्चरण किये थे तथा इनके सिवाय उत्तर तप भी खूब बढ़ गये थे।

इन बड़े-बड़े तपों से वे उत्तम मुनिराज ऐसे सुशोभित हो रहे थें, मानों मेघों के आवरण से निकला हुआ सूर्य ही अपनी किरणों से सुशोभित हो रहा हो। यद्यपि वे मुनिराज समस्त प्रकार की विक्रिया अर्थात् विकार भावों को छोड़कर कठिन तपस्या करते थे, तथापि आश्चर्य की बात हैं कि उनके तप के बल से आठ प्रकार की विक्रिया प्रकट हो गयी थी। जिन्हें अनेक प्रकार की औषध ऋद्धि प्राप्त है और जो आमर्श, क्ष्वेल तथा जल्ल आदि के द्वारा प्राणियों का उपकार करते हैं, ऐसे मुनिराज की समीपता जगत् का कल्याण करने वाली थी।

यद्यपि वे आहार नहीं लेते थे, तथापि शक्तिपात्र से ही उनके रस ऋद्धि प्रकट हुई थी और तपश्चरण के बल से प्रकट हुई उनकी बल ऋद्धि भी विस्तार पर रही थी। वे मुनिराज अक्षीणसंवास तथा अक्षीणमहानस ऋद्धि को भी

धारण कर रहे थे। सो ठीक ही है, क्योंकि पूर्ण रीति से पालन किया हुआ तप अक्षीण फल उत्पन्न करता है। विकल्प रहित चित्त की वृत्ति धारण करना ही अध्यात्म हैं ऐसा निश्चय कर योग के जानने वालों में श्रेष्ठ उन जितेन्द्रिय योगिराज ने मन को जीतकर उसे ध्यान के अभ्यास में लगाया।

उत्तमकक्षा, अशंश्रण, संसार, एकत्व, अशुचित्व, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, लोकबोधि-दुर्लभ और ध र्माख्यात्व इन बारह भावनाओं को उन्होंने विशुद्ध चित्त से चिन्तवन किया था।

वे आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान का चिन्तवन करते हुए कर्मो के अंशों को क्षीण करते हुए धर्मध्यान धारण करते थे। जिस प्रकार दीपिका के प्रज्ज्वलित होने पर उसके चारों ओर कज्जल के अंश दिखाई देते हैं, उसी प्रकार उनकी ध्यानरूपी दीपिका के प्रज्ज्वलित होने पर उसके चारों और क्षणभर नष्ट हुए कर्मो के अंश दिखाई देते थे।

सब दिशाओं में फैलता हुआ उनके शरीर की दीप्ति उस वन को नीलमणि की कांति से व्याप्त हुआ-सा बना रहा था। उनके चरणों के समीप विश्राम करने वाले मृग आदि पशु सदा विश्वस्त अर्थात् निर्भय रहते थे, उन्हें सिंह आदि दुष्ट जीव कभी बाधा नहीं पहुँचाते थे, क्योंकि वे स्वयं वहाँ आकर अक्रूर अर्थात् शांत हो जाते थे। उनके चरणों के समीप हाथी, सिंह आदि विरोधी जीव भी परस्पर का वैर-भाव छोड़कर इच्छानुसार उठते-बैठते थे और इस प्रकार वे मुनिराज के ऐश्वर्य को सूचित करते थे। हाल की ब्यायी हुई सिंही बच्चे का मस्तक सूंघकर उसे अपने बच्चे के समान अपना दूध पिला रही थी।

हाथी अपने झुण्ड के मुखियों के साथ-साथ सिंहों के पीछे-पीछे जा रहे थे और स्तन के पीने में उत्सुक हुए सिंह के बच्चे हथिनियों के समीप पहुँच रहे थे। बालपन के कारण मधुर शब्द करते हुए हाथियों के बच्चों को सिंह अपने पैने नाखूनों से उनकी गरदन पर स्पर्श कर रहा था और ऐसा करते हुए उस सिंह को हाथियों के सरदार बहुत ही अच्छा समझ रहे थे - उसका अभिनंदन कर रहे थे। उन मुनिराज के ध्यान करने के आसन के समीप की भूमि को साफ करने की इच्छा से हथिनियाँ कमलिनी के पत्तों का दोना बनाकर उनमें भर-भरकर पानी ला रही थी। हाथी अपने सूंड के अग्रभाग से उठाकर लाये हुए कमल उनकेदोनों चरणों पर रख देते थे और इस तरह वे उनकी उपासना करते थे। अहा! तपश्चरण कैसी शांति उत्पन्न करने वाला है।

वे मुनिराज चरणों समीप आये हुए सर्पो के काले फणाओं से ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों पूजा के लिए नीलकमलों की मालाएँ ही बनाकर रखी हो। बामी के छिद्रों से जिन्होनें केवल फण ही बाहर निकालें हैं, ऐसे काले सर्प उस समय ऐसे जान पड़ते थे, मानों मुनिराज के चरणों के समीप किसी ने नील-कमलों का अर्घ्य ही बनाकर रखा हों। वन की लताएँ फूलों की उज्ज्वल तथा नीचे को झुकी हुई छोटी-छोटी डालियों से अच्छी सुशोभित हो रही थी, मानों फूलों का अर्घ्य लेकर भक्ति से नमस्कार करती हुई मुनिराज की सेवा की कर रही हों।

वन के वृक्ष, जिन पर मादा सदा फूल खिले रहते हैं और जो वायु से हिल रहे हैं, ऐसे शाखाओं के अग्रभागों से ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों संतोष से बार-बार नृत्य ही करना चाहते हों। जिनके फण ऊँचें उठ रहे हैं, ऐसे सर्प, भ्रमरों के शब्दरूपी सुंदर गाने के साथ-साथ फणाओं पर लगे हुए रत्नों की किरणों से दैदीप्यमान अपने फणाओं को घुमा-घुमाकर नृत्य कर रहे थे। मोर, कोकिलों के सुन्दर शब्दरूपी डिण्डिम बाजे के अनुसार होने वाले लय के साथ-साथ सर्पो के देखते रहते भी बार-बार नृत्य कर रहे थे।

इस प्रकार अतिशय शांत रहने वाले उन मुनिराज के माहात्म्य से वह वन भी शांत हो गया था। सो ठीक ही हैं, क्योंकि महापुरूषों का संयोग क्रूर जीवों में भी शांति उत्पन्न कर देता हैं। इस वन में अनेक पक्षी शांत शब्दों से चहक रहे थे, और वे ऐसे जान पड़ते थे, मानों इस बात की घोषणा ही कर रहे हों कि यह तपोवन अत्यन्त शांत है। उन मुनिराज के तप के प्रभाव से वह वन का आश्रम ऐसा शांत हो गया था कि यहीं के किसी भी जीव को किसी के भी द्वारा कुछ भी उपद्रव नहीं होता था। तप के सबंध में बढ़े हुए मुनिराज के बढ़े भारी तेज से तिर्यचों के भी हृदय का अंधकार दूर हो गया था और अब वे परस्पर में किसी से द्रोह नहीं करते थे – अहिंसक हो गये थे।

विद्याधर लोग गतिभंग हो जाने से उनका सद्भाव जान लेते थे और विमान से उतरकर ध्यान में बैठे हुए मुनिराज की बार-बार पूजा करते थे। तप की शक्ति से उत्पन्न हुए मुनिराज के बड़े भारी माहात्म्य से जिनके मस्तक झुके हुए हैं, ऐसे देवों के आसन भी बार-बार कम्पयमान होने लगते थे। कभी-कभी क्रीड़ा के हेतु से आयी हुई विधाधारियाँ उनके सर्व शरीर पर लगी हुई लताओं को हटा जाती थीं। इस प्रकार धारण किये हुए समीचीन धर्मध्यान के बल से जिनके तप की शक्ति उत्पन्न हुई हैं, ऐसे वे मुनि लेश्या की विशुद्धि को प्राप्त होते हुए शुक्ल ध्यान के सम्मुख हुए।

# बाहुबली का केवलज्ञान और भरत के द्वारा की हुई पूजा

एक वर्ष का उपहास समाप्त होने पर भरतेश्वर ने आकर जिनकी पूजा की हैं ऐसे महामुनि बाहुबली कभी नष्ट नहीं होने वाली केवलज्ञान रूपी उत्कृष्ट ज्योति को प्राप्त हुए। वह भरतेश्वर मुझसे संक्लेश को प्राप्त हुआ हैं। अर्थात् मेरे निमित्त से उसे दु:ख पहुँचा हैं। यह विचार बाहुबली के हृदय में विद्यमान रहता था।

**निज संशोधन के क्षण में, बाहुबली मुनि के मन में।**
**वहीं बिजलियाँ क्रौंध उठे, विस्मृतियाँ भी जाग उठे।।**

**हे भरतेश्वर! निष्कारण, 'क्लेश हुआ मेरे कारण।।'**
**जब-जब पर चिंता आती, ध्यान विघ्न पहुँचा जाती।।**

इसलिए केवलज्ञान ने भरत की पूजा की अपेक्षा की थी।

**भावार्थ** – भरत के पूजा करते ही बाहुबली का हृदय शल्यरहित हो गया और उसी समय उन्हें कवलज्ञान भी प्राप्त हो गया। प्रसन्न हैं बुद्धि जिसकी ऐसे सम्राट् भरत ने केवलज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने से पहले और पीछे दोनों ही समय विधिपूर्वक उन मुनिराज की पूजा की थी। भरतेश्वर ने केवलज्ञान उत्पन्न होने से पहले जो पूजा की थी वह अपना अपराध नष्ट करने के लिए की थी और केवलज्ञान होने के बाद जो बड़ी भारी पूजा की थी, वह केवलज्ञान की उत्पत्ति का अनुभव करने के लिए की थी।

जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ हैं ऐसे अपने छोटे भाई बाहुबली की भरतेश्वर ने जो बड़ी भारी पूजा की थी, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता हैं? प्रथम तो बाहुबली भरत के छोटे भाई थे, दूसरे भरत को धर्म का प्रेम

बहुत था, तीसरे उन दोनों का अन्य अनेक जन्मों से संबंध था, और चौथे उन दोनों में बड़ा भारी प्रेम था। इस प्रकार इन चारों में से एक-एक भी भक्ति की अधिकता को बढ़ाने वाले हैं, यदि यह सब सामग्री एक साथ मिल जायें तो वह कौनसी उत्तम क्रिया को पुष्ट नहीं कर सकती? अर्थात् उससे कौनसा अच्छा कार्य नहीं हो सकता? सम्राट् भरतेश्वर ने मंत्रियों के साथ, राजाओं के साथ और अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों तथा पुरोहितों के साथ उन बाहुबली मुनिराज को बड़े हर्ष से नमस्कार किया था। इस विषय में अधिक कहाँ तक कहा जावे, संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि उसने रत्नों का अर्घ्य बनाया था, गंगा के जल की धारा दी थी, रत्नों की ज्योति के दीपक चढ़ाये थे, मोतियों से अक्षत की पूजा की थी, अमृत के पिण्ड से नैवेद्य अर्पित किया था कल्पवृक्ष के टुकड़ों (चूर्णों) से धूप की पूजा की थी, परिजात आदि देववृक्षों के फूलों के समूह से पुष्पों की अर्चा की थी, और फलों के स्थान पर रत्नों सहित समस्त निधियाँ चढ़ा दी थी। इस प्रकार उसने रत्नमयी पूजा की थी।

**गंगाजल की जलधारा मलयागिरि चंदन प्यारा।**
**अक्षत मुक्तामणियों के, हीरक पभालड़ियों के।।**

**दिव्य वृक्ष के फूलों की, महक-महक अनुकूलों की।**
**अर्पित कर सुमनावलियाँ, मृदुल-मधुर शब्दावलियाँ।।**

**ले नैवेद्य सुधारस के, सजा थालियाँ हँस-हँस के।**
**ज्योतिर्मय रत्नावलियाँ, मना रहा दीपवलियाँ।**

**सुर-तरूओं का यह चूरण धूप अनल में करूँ दहन।**
**फल में क्या हैं नव निधियाँ, अर्घ्य लिए नवधाविधियाँ।।**

आसन कम्पायमान होने से जिन्हें बाहुबली के कवलज्ञान उत्पन्न होने से बोध हुआ हैं, ऐसे इन्द्र आदि देवों ने आकर उनकी उत्कृष्ट पूजा की।

**घण्ट नाद सिंह नाद बजे,कहीं नगाड़े शंख बजे।**
**चतुर्निकाय निवासों में, देवों के आवासों में।।**

**सुरविस्मित! मन द्वन्द्व हुआ अहो परम आनंद हुआ।**
**केवलज्ञानी बाहुबली, जय-जय-जय हे पुण्यबली।।**

**ज्ञान रश्मियाँ निखर चुकीं, तीन लोक में बिखर चुकीं।**
**परम शांति संचारित हुई, कण-कण में विस्तारित हुई।।**

**तभी देवगण आते हैं, पद में शीश झुकाते हैं।**
**क्षेपण कर पुष्पांजलियाँ संस्तुतियाँ अर्घ्यावलियाँ।।**

उस समय स्वर्ग के बगीचे के वृक्षों को हिलाने में चतुर तथा गंगा नदी की बूंदों को हरण करने वाली सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बह रही थी। देवों के नगाड़े आकाश की गंभीरता से बज रहे थे और कल्पवृक्षों से उत्पन्न हुआ फूलों का समूह आकाश में पड़ रहा था। उनके ऊपर देवरूपी कारीगरों के द्वारा बनाया हुआ रत्नों का छत्र सुशोभित हो रहा था और नीचे बहुमूल्य मणियों से बना हुआ दिव्य सिंहासन दैदीप्यमान हो रहा था, उनके दोनों और ऊँचाई पर चमरों का समूह स्वयं ढूल रहा था तथा जिसका ऐश्वर्य प्रसिद्ध हैं, ऐसी उनके योग्य सभी भूमि अर्थात्

गंधकुटी भी बनायी गयी थी।

इस प्रकार देवों ने जिनकी पूजा की है और जिन्हें केवलज्ञान रूपी ऋद्धि प्राप्त हुई हैं ऐसे वे योगीराज अनेक मुनियों से घिरे हुए इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानों नक्षत्रों से घिरा हुआ चन्द्र ही हों। वे घातियाकर्मो के क्षय से उत्पन्न हुई अर्हन्त परमेष्ठी की अवस्था को धारण कर रहे हैं। इसलिए देव लोग उनकी उपासना करते हैं।

# भगवान बाहुबली का उपदेश

भगवान बाहुबली ने पृथिवी में विहार किया। इस प्रकार समस्त पदार्थो को जानने वाले बाहुबली अपने वचनरूपी अमृत के द्वारा समस्त संसार को संतुष्ट करते थे।

भगवान बाहुबली के सामने हाथ जोड़े हुए चक्रवर्ती भरत ने धर्म का स्वरूप पूछा तब भगवान् इस प्रकार कहने लगें -

जो शिष्यों की कुगति से हटाकर उत्तम स्थान में पहुँचा दे, सत पुरूष उसे ही धर्म कहते हैं। उस धर्म के चार भेद हैं - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचरित्र और सम्यकतप। यह धर्म कर्तव्य प्रधान है।

अपने आप अथवा दूसरे के उपदेश से जीव आदि सात तत्वों में जो श्रद्धान होता हैं, वह सम्यग्दर्शन कहलाता हैं। यह सम्यग्दर्शन शंका आदि दोषों से रहित होता हैं तथा औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भावों द्वारा इसकी विवेचना होती है अर्थात् भावों की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के तीन भेद हैं। संशय, पिपर्यय और अनध्यवसाय का अभाव होने से उन्हीं जीवादि सात तत्वों का यथार्थ ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान कहलाता है। जिससे कर्मो का आस्त्रव न हो, उसे चरित अथवा संयम कहते हैं। जिससे कर्मो की निर्जरा ऐसी वृत्ति धारण करना तप कहलाता है।

ये चारों ही गुण यदि कषायसहित हो तों स्वर्ग केकारण हैं और कषाय और शुभ-अशुभ के योग ये जीवों के कर्मबंध के कारण हैं। मिथ्यात्व पाँच तरह का हैं, अविरति एक सौ आठ प्रकार की हैं, प्रमाद पन्द्रह हैं, कषाय के चार भेद हैं और सम्यग्ज्ञान रूपी नेत्र को धारण करने वाले लोगों को योग के पन्द्रह भेद जानना चाहिए। विद्वानों ने कर्मो का निरूपण मूल और उत्तर भेद के द्वारा किया है। कर्मो के मूल भेद आठ हैं और उत्तर भेद एक सौ अड़तालीस हैं। प्रकृति आदि के भेद से बंध चार प्रकार का जानना चाहिए तथा कर्म उदय में आकर ही फल और बंध के कारण होते हैं।

तुम लोग शक्तिमान हो, निकट भव्य हो और आगम को जानने वाले हो, इसलिए संसार के कारण स्वरूप-दोष, दुखः, बुढ़ापा और मृत्यु आदि पापों से भरे हुए इस भयंकर गृहस्थाश्रम को छोड़कर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह-जय और वीतरागादि मुनियों में, जिनके पुलाक आदि भेद हैं ऐसे अनगारादि मुनियों में अथवा प्रमत्त सय्यत को आदि लेकर उत्कृष्ट गुणस्थानों में रहने वाले प्रमत्तविरत आदि मुनियों में से किसी एक की अवस्था धारण कर निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकार के उत्तम मोक्ष की साधना करो।

इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में रहने वाले बुद्धिमान पुरूष सम्यग्दर्शनपूर्वक दान, शील, उपवास तथा अरहन्त आदि परमेष्ठियों की पूजा करें, शुभ परिणामों से श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करे और यथायोग्य सज्ज्वति आदि परमस्थानों को प्राप्त हों।

इस प्रकार भरतेश्वर ने समीचीन तत्वों की रचना से भरी भगवान की वचनरूप विभूति सुनकर सब सभा के साथ-साथ कहीं हुई सब बातों को ज्यों की त्यों माना अर्थात् उनका ठीक-ठाक श्रद्धान किया। मति, श्रुत, अवधि इन तीनों ज्ञानरूपी नेत्रों और सम्यग्दर्शन की विशुद्धि को धारण करने वाला देशसंयमी भरत भगवान् बाहुबली की वंदना कर अपने उत्तर नगर आयोध्या को आया।

इधर तीनों लोकों के स्वामी भगवान् बाहुबली ने भी धर्म के योग्य क्षेत्रों में समीचीन धर्म का बीज बोकर उसे धर्मवृष्टि के द्वारा खूब सींचा।

# योगनिरोध एवं मोक्षगमन

जब आयु के कुछ दिन बाकी रह गये, तब योगों का निरोध कर श्रीशिखर और सिण्ड शिखर के बीच में कैलाश पर्वत पर जाकर विराजमान हुए।

किसी दिन सूर्योदय के शूभ मुहूर्त और शुभ नक्षत्र में भगवान बाहुबली ने पूर्व दिशा की और मुँह कर कार्योत्सर्ग मुद्रा में विराजमान हुये, उन्होंने तीसरे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम के शुक्लध्यान से मन, वचन, काय तीनों योगों का निरोध किया, फिर अंत में चौदहवें गुणस्थान में ठहरकर जितनी देर में अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच ह्रस्व अक्षरों का उच्चारण होता हैं, उतने ही समय में चौथे व्युपरत क्रियानिवृत्ति नाम के शुक्ल ध्यान से वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र इन चारों अघातिया कर्मो का नाश किया।

औदारिक, तैजस, कार्मण इन तीनों शरीरों के नाश होने से उन्हें सिद्धपर्याय प्राप्त हुई, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख, सूक्ष्मत्व, अव्यावाध और अवगाहनत्व ये निज आठ गुण पूरे-पूरे प्रगट हो गये, क्षणभर में ही तनुवातवलय में जा पहुँचे तथा वहाँ पर नित्य, निरंजन, अपने शरीर से कम, अमूर्त, आत्मा से उत्पन्न हुये सुख में तल्लीन और निरंतर संसार को देखते हुए विराजमान हुए।

उसी समय मोक्षगमन की पूजा करने की इच्छा करते हुए सब देव आये, उन्होंने पवित्र, उत्कृष्ट, मोक्षा का साधन, स्वच्छ और निर्मल ऐसे भगवान के शरीर को बहुमूल्य पालकी में विराजमान किया। तदनंतर जो अग्नि कुमार जाति के देवों के इन्द्र के रत्नों की कांति से दैदीप्यमान ऐसे बड़े भारी मुकुट से उत्पन्न हुई हैं तथा चंदन, अगर, कपूर, केशर आदि सुगंधित पदार्थो से और घी आदि से बढ़ाई गई हैं, ऐसी अग्नि से जो पहले कभी देखने सुनने में नहीं आई, ऐसी जगत्रूपी घर की सुगंधि प्रगट कर उस शरीर का पहला आकार नष्ट कर दूसरा आकार बना दिया अर्थात् उसे भस्म कर दिया तथा अष्ट द्रव्यों से उनकी पूजा की।

तदनंतर सब देवों और इन्द्रों ने बड़ी भक्ति से भगवान बाहुबली के शरीर की भस्म उठाई और 'हम भी ऐसे हों' यही सोचकर अपने माथे पर, दोनों भुजाओं में, गले में और छाती पर लगाई। उन्होंने वह भस्म बड़ी ही पवित्र मानी और उसे लगाकर वे धर्म के रस में डूब गये।

# भगवान बाहुबली की प्रतिमाएँ

दक्षिण कर्नाटक में मूडबद्री में उत्तर में कायस्थ में एक प्रतिमा विराजमान हैं, जो कि 41 फुट प्रमाण हैं, इसका निर्माण लगभग सन् 1432 में हुआ।

मूड़बद्री से कुछ दूर बेणुर में 35 फीट ऊँची बाहुबली की प्रतिमा है। इसका निर्माण सन् 1604 में हुआ।

मैसूर के पास गोम्मटगिरि नामक टीले पर 18 फुट ऊँची बाहुबली की प्रतिमा हैं, जो कि कुछ वर्ष पूर्व दृष्टि में आई है।

कर्नाटक के बीजापुर जिले के बादमी पर्वत शिखर के उत्तरी ढाल पर चार शैल में उत्क्रीर्ण गुहा मंदिर है। उनमें से चौथे गुहा मंदिर के मण्डप में तीर्थकर प्रतिमाओं के मध्य एक बाहुबली की प्रतिमा है। यह 7 फुट 6 इंच है। इस मूर्ति की केश सज्जा दर्शनीय है।

एक कांस्य मूर्ति भगवान बाहुबली की लगभग 1.5 फीट ऊँची है। जो (आज फिस ऑफ बेल्स संग्रहालय) मुम्बई में (क्रमांक 105) रखी हुई है।

कालक्रम से तृतीय बाहुबली मूर्ति ऐहाल के इन्द्र सभानामक 32वें गुहामन्दिर की अद्य निमित्त वेदी में उत्क्रीर्ण है।

बीजापुर जिले के इस राष्ट्रकुल कालीन केन्द्र का निर्माण 8वीं-9वीं सदी में हुआ है। इस गुहा मंदिर में 9वीं-10वीं सदी में विविध चिंत्राकंन प्रस्तुत किये गये हैं। उनमें एक बाहुबली का चित्र भी हैं।

बाहुबली की इस रूप में यह प्रथम और संभवत: अंतिम चित्रांकन हैं। ऐसे ही अन्य स्थानों पर बाहुबली की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

उत्तर भारत में जूनागढ़ संग्रहालय में एक मूर्ति बाहुबली की हैं। जो नवमीं शताब्दी की है।

खजुराहों में पार्श्वनाथ मंदिर की बाहरी दक्षिणी दीवार पर बाहुबली की मूर्ति उत्क्रीर्ण हें, जो दशवीं शताब्दी की हैं।

लखनऊ संग्रहालय में एक मूर्ति 10वीं शताब्दी की है। जिसके चरण-मस्तक खंडित है।

देवगढ़ में प्राप्त 10वीं शताब्दी की मूर्ति हैं, जो वहीं के साहू जैन संग्रहालय में रखी हैं। देवगढ़ में बाहुबली की 6 मूर्तियाँ प्राप्त हैं।

बिलहरी-जिला जबलपुर (म.प्र.) में शिलापट्ट प्राप्त हुआ हैं। जिस प्रकार बाहुबली की प्रतिमा उत्क्रीर्ण हैं, जो लगभग 1200 वर्ष पुरानी है।

बीसवीं शताब्दी मेंआरा, फिरोजाबाद, धर्मस्थल, कर्नाटक, गोम्मटगिरि-इंदौर, सागर, हस्तिनापुर, कुंथलगिरि आदि स्थलों पर बाहुबली की प्रतिमा विराजमान हैं।

भगवान वृषभदेव के साथ बाहुबली, भरत की मूर्तियाँ की परम्परा रही है। देवगढ़ खजुराहों में ग्वालियर की गुफाओं में ऐसी मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। एलोरा की गुफाओं में भगवान पार्श्वनाथ और बाहुबली की मूर्तियाँ

कई जगह उत्कीर्ण हैं।

कहीं-कहीं पर बाहुबली की मूर्तियों पर लता के साथ-साथ सांप और बिच्छू भी चढ़ते हुए दिखाए गये है। कहीं-कहीं पर दो महिलाएँ लता को थामें हुए दिखाई गई हें। दक्षिण की बाहुबली मूर्ति में प्रायः सांप की वामियाँ अवश्य रहती हैं।

यद्यपि भगवान बाहुबली तीर्थकर नहीं थे फिर भी उनकी मूतियाँ का निर्माण उनकी पूजा की परम्परा अतीव प्राचीन है। यह उनके अप्रति-त्याग और तपश्चरण का ही प्रभाव हैं, जो कि आज उनकी मूर्ति की स्थापना से दिगम्बर के गौरव को सर्वतोमुखीकर रहा हैं।